शिक्षक संदर्शिका

पाठशाला प्रबंध, सामुदायिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा

पंचम प्रश्न-पत्र

(बी० टी० सी० के नवीन संशोधित द्विवर्षीय पाठ्यक्रमानुसार)

वर्ष-1981

NIEPA DC
D00345

राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

Sub. National Systems **Unit,**
National Institute of **Educational**
Planning and Aministration
17-B,Sri Aurbindo Marg, New Delhi-**110016**
DOC. No........3.45.........
Date..................26/8/85...

प्राक्कथन

राष्ट्रीय विकास की धारा में शिक्षा विशेषतया प्राथमिक स्तरीय शिक्षा के स्तरोन्नयन एवं गुणात्मक विकास की महत्वपूर्ण समस्या के प्रति शिक्षा विभाग अधिक जागरुक एवं क्रियाशील है । एक सुविज्ञ, कुशल एवं प्रशिक्षित शिक्षक के द्वारा ही शिक्षा को मौलिक जीवन प्राप्त होता है । फलस्वरूप शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों विधाओं एवं कतिपय आधारभूत व्यवहारिक कठिनाइयों को ध्यान में रख कर नवीन संशोधित द्विवर्षीय बी० टी० सी० पाठ्यक्रम को वर्ष 1980–81 से इस प्रदेश में प्रभावी किया गया है ।

वस्तुतः प्रचलित पाठ्यक्रम के नवीन पक्षों तथा प्रशैक्षणिक तथ्यों में शिक्षक–प्रशिक्षक अवगत हो सकें, और वे शिक्षा की अभिनय भूमिका के निर्वहन में अपेक्षाकृत अधिक कार्य–सक्षम बन सकें, इस आशय से संबंधित पाठ्यक्रमाधारित प्रथम तथा द्वितीय वर्ष विषयक समस्त पांचों प्रश्न–पत्रों से सम्बन्धित संदर्शिकाओं का अलग–अलग निर्माण किया गया है ।

यह विशेष रूप से विचारणीय है कि इस प्रस्तुत संदर्शिका का प्रशिक्षण विज्ञान (सैद्धांतिक) के अन्तर्गत पंचम प्रश्न–पत्र "पाठशाला प्रबन्ध, सामुदायिक एवं स्वास्थ्य शिक्षा," (द्वितीय वर्ष) के परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय प्रकरणों पर प्रकाश डाला गया है यथा बेसिक विद्यालयों के सुसंगठन एवं प्रशासन का ज्ञान, बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक उन्नयन के कार्यक्रम और उनकी सफलता के लिए समाज का अधिकाधिक सहयोग, लोकतान्त्रिक जीवन पद्धति, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य ।

इस संदर्शिका के सृजन हेतु दो कार्यशालायें आयोजित की गईं, जिसमें राज्य शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद तथा अन्य शिक्षण संस्थाओं के प्रबुद्ध सदस्यगण ने सराहनीय योगदान किया है ॥ एतदर्थ मैं उनका आभारी हूं ।

यह संदर्शिका मात्र दिशा निर्देशन करती है न कि दिशाओं को बांधती है । इसके सुधार हेतु शिक्षक–प्रशिक्षकों एवं शिक्षाविदों से प्राप्त सुझावों का स्वागत किया जायगा ।

पृथ्वी राज चौहान,
शिक्षा निदेशक,
उत्तर प्रदेश ।

दिनांक––10–9–81

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ संख्या
1—प्रदेश में लोकतंत्रात्मक शिक्षा का संगठन	1—3
2—बेसिक शिक्षा परिषद उत्तर प्रदेश	4
3—(क) जिला बेसिक शिक्षा समिति	5
(ख) ग्राम शिक्षा समिति	5
4—प्रधानाध्यापक/अध्यापक–कर्तव्य एवं उत्तर दायित्व	6—10
5—बृहत कक्षा शिक्षण	11
6—निवर्गशाला पद्धति	12
7—उपचारात्मक शिक्षण	13—14
8—मिश्रित विद्यालय एवं मिश्रित स्टाफ	15
9—विद्यालय संकुल	16
10—संस्थागत नियोजन	17
11—समय विभाग चक्र	18—20
12—पाठ्यक्रम	21—22
13—पाठ्य पुस्तकें	23
14—बुक बैंक	24
15—विद्यालयी अभिलेख एवं पंजिकाएं	25—26
16—अध्यापक दैनन्दिनी	27—28
17—संचयी अभिलेख एवं प्रगतिपत्र का अनुसरण	29—31
18—निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण	32—33
19—अध्यापक का मूल्यांकन	34—35
20—शिक्षा का गुणात्मक सुधार	36
21—सहपाठक्रमीय क्रिया कलाप	37—40
22—विद्यालय तथा समुदाय	43—48
23—विद्यालयी स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम एवं शिक्षक की भूमिका	51—52
24—शुद्ध पेयजल	53
25—मूत्रालय एवं शौचालय	54
26—अपोषण एवं कुपोषण	55—56
27—स्वास्थ्य सेवाओं में प्राइमरी हेल्थ सेन्टर की भूमिका	57
28—स्वच्छता	58—59
29—प्रदूषण	60—62
30—मादक वस्तुएं	63
31—शारीरिक मुद्रा एवं थकान	64—65
32—संदर्भ पुस्तकें	66—67
33—सन्दर्शिका–सृजनहेतु आयोजित कार्यशालाओं के प्रतिभागीगण	68

प्रथम खण्ड (क)

पाठशाला प्रबन्ध

पाठ–1

प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा का लोकतन्त्रात्मक संगठन

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में जनतंत्रात्मक व्यवस्था स्वीकार की गई है। जनतंत्र की सफलता के लिये यह आवश्यक है कि हम इसे केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही स्वीकार न करें अपितु जीवन के विविध क्षेत्रों में जैसे धार्मिक सामाजिक आर्थिक तथा शैक्षिक आदि सभी में इसे अपनायें आदर्श जनतंत्र में व्यक्ति को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किय गया है। जनतंत्र का विश्वास है कि व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के साथ ही सामाजिक विकास सम्भव हो सकता है। जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शक्ति सामर्थ क्षमता एवं बुद्धि के अनुसार उन्नति करने का अवसर प्रदान होता है। व्यक्तित्व की सुरक्षा तथा आदर, व्यक्ति स्वातंत्र्य विचार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मानव शक्ति पर अगाध विश्वास, स्वतंत्रता तथा समानता की भावना, शान्ति का आदर, सहयोग तथा सामूहिक हित की भावना वातावरण के महत्व को स्वीकार करना आदि सब जनतंत्र के आदर्श हैं।

इब्राहिम लिंकन के अनुसार प्रजातंत्र जनता का जनता द्वारा और जनता के लिये शासन है। केवल शासन में ही नहीं अपितु मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था होनी चाहिए। हमारे संविधान में जनतंत्र शब्द इसी व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

जनतंत्रात्मक संगठन की विशेषताऐं–जनतंत्रात्मक व्यवस्था की निम्नलिखित आधारभूत मान्यतायें हैं :—

1—जाति, धर्म, वर्ग, लिंग, रंग तथा आयु का कोई भेदभाव न रखते हुये प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व आदरणीय है।

2—प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता, क्षमता और बुद्धिमत्ता के अनुसार जीवन में उन्नति, प्रगति और विकास करने का समान अवसर प्राप्त होना चाहिए।

3—किसी व्यक्ति अथवा वर्ग का किसी अन्य व्यक्ति या वर्ग द्वारा शोषण नहीं होना चाहिए।

4—कानून की दृष्टि में सभी व्यक्ति समान हैं। सभी व्यक्तियों को अपने हितों की रक्षा करने के लिये कानून का संरक्षण समान रूप से प्राप्त होना चाहिए।

5—प्रत्येक व्यक्ति को लेखनी और वाणी द्वारा अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए।

6—प्रत्येक व्यक्ति में विश्व बंधुत्व एवं सहअस्तित्व की भावना का समावेश होना चाहिए।

7—प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों का प्रयोग करने एवं कर्तव्य पालन का अधिकार होना चाहिए।

जनतंत्रात्मक विचारधारा के अनुसार हमारी उत्तर प्रदेश सरकार ने विद्यालयों का संगठन एवं व्यवस्था की है। प्रत्येक बालक को शिक्षित करने के लिये अनेक योजनायें प्रारम्भ की जा रही हैं। प्रदेश में प्राइमरी स्तर तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की गई है। अनौपचारिक शिक्षा के अन्तर्गत बालक खेतों, खलियानों और कल–कारखानों में भी शिक्षा प्राप्त कर सकता है।

प्राथमिक शिक्षा—

"राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किये जाने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत समस्त बालकों के लिये जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा"

भारतीय संविधान

शिक्षा प्रजातंत्र का प्राण है। जिन देशों में लोकतंत्रात्मक प्रणाली है वहां के नागरिकों को शिक्षित तथा जागरुक होना आवश्यक है। शिक्षा द्वारा आदर्श नागरिकता एवं अपने कर्तव्यों के पालन करने का बोध प्राप्त होता है। देश में प्रजातंत्रात्मक शासन की सफलता के लिये नागरिकों का साक्षर होना आवश्यक है। किन्तु यह लक्ष्य बिना प्राथमिक शिक्षा के विकास के प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

प्राथमिक शिक्षा का संक्षिप्त इतिहास—

अनिवार्यता से पूर्व--प्राचीन भारत में वैदिक काल में प्राथमिक शिक्षा परिवार में प्रदान की जाती थी भाषा साहित्य तथा शास्त्र प्रमुख विषय थे। इसके अतिरिक्त लिखना पढ़ना एवं प्रारम्भिक व्याकरण का भी ज्ञान कराया जाता था। वैदिक काल में आश्रम पद्धति के अनुसार जो व्यक्ति वानप्रस्थ आश्रम में होते थे वे बालकों को शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी करते थे बालक उनके आश्रमों में रहते थे और वे अपने जीवन भर के अर्जित ज्ञान और अनुभवों का लाभ इन बालकों को प्रदान करते थे। कालान्तर में यही आश्रम बड़े-बड़े गुरुकुलों के रूप में विकसित हो गये। विद्याध्ययन काल में इन बालकों को पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना होता था और इन्हें ब्रह्मचारी कहते थे।

मुस्लिम काल में—

प्राथमिक शिक्षा मकतबों व मदरसों में प्रदान की जाती थी। वर्णमाला के ज्ञान के अतिरिक्त प्रारम्भिक गणित भी सिखाया जाता था। कुरान की आयतें रटायी जाती थीं। सुलेख पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता था। इस काल में कुछ संस्कृत पाठशालायें भी प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य सम्पन्न करती थी।

ब्रिटिश भारत में प्राथमिक शिक्षा—

जिस समय भारत में अंग्रेजों ने पदार्पण किया उस समय देश में शिक्षा का यथेष्ट विस्तार था। सन् 1835 में बंगाल और बिहार में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या लगभग एक लाख थी परन्तु आगे चल कर ये विद्यालय बन्द हो गये।

सन् 1854 से 1882 तक सन् 1854 के वुड के घोषणा-पत्र ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार पर बल दिया। अनुदान द्वारा देशी विद्यालयों को प्रोत्साहित करने की सिफारिश की। 1859 में स्टेनले के आज्ञा पत्र में यह स्वीकार किया गया कि अर्थाभाव तथा सहायक अनुदान की कमी के कारण प्राथमिक शिक्षा की उन्नति नहीं हो रही है। शिक्षा का प्रसार करना सरकार का मुख्य कर्तव्य है अतः आवश्यकता पड़ने पर स्थानीय कर लगाना चाहिए।

सन् 1882 से 1905 तक—सन् 1882 में भारतीय शिक्षा आयोग ने सिफारिश की कि प्राथमिक शिक्षा का भार स्थानीय सरकारें लें। सन् 1883—84 में लार्ड रिपन ने लोकल सेल्फ गवर्नमेन्ट ऐक्ट पास किया, जिसके अनुसार प्राथमिक शिक्षा का समस्त उत्तरदायित्व स्थानीय सरकारों पर आ गया और सरकार इससे मुक्त हो गई। फलतः धनाभाव के कारण प्राथमिक शिक्षा का विकास न हो सका।

लार्ड कर्जन ने प्राथमिक शिक्षा के विकास पर विशेष ध्यान दिया। सन् 1905 के कलकत्ता अधिवेशन में कांग्रेस में राष्ट्रीय आन्दोलन संचालन का निश्चय किया तथा देश में शिक्षा प्रसार की अनिवार्यता पर बल दिया।

महात्मा गांधी ने अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति के लिये बेसिक शिक्षा पद्धति को विकसित किया जिसके अन्तर्गत किसी शिल्प के माध्यम से समवाय द्वारा विविध विषयों का ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था रखी गई है। महात्मा गांधी ने शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की दृष्टि से भी बेसिक शिक्षा पर विशेष बल दिया था। बेसिक शिक्षा के विकास में हरिजन पत्रिका और वर्धा योजना का महत्वपूर्ण स्थान है।

स्वतन्त्र भारत में अनिवार्य शिक्षा :--

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता को और भी तीव्रता से अनुभव किया जाने लगा। भारतीय संविधान में स्पष्ट रूप से अनिवार्य शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया गया और यह आशा की गई कि संविधान लागू होने के समय से 10 वर्ष के अन्दर 6 से 14 आयु वर्ग के समस्त बालकों के लिए अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था हो जायेगी। सन् 1947 में 6 से 11 वर्ष तक की आयु के 30% बालक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। सन् 1977 तक इस वर्ग के शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों का प्रतिशत 75·5 हो गया। प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों को पर्याप्त योग प्रदान कर रही है। केन्द्रीय सरकार किये जाने वाले व्यय का 3/4 वार्षिक सहायता अनुदान के रूप में प्रदान करती है।

विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा का निरन्तर विकास किया जा रहा है। पंचम पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा के विकास को प्रथम स्थान दिया गया और उस पर 743 करोड़ रुपये व्यय करने की व्यवस्था की गई। इस योजना काल में प्राथमिक विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले विद्यार्थियों की संख्या, में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। राष्ट्रीय शिक्षा अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सर्वेक्षण के अनुसार विद्यालयों की संख्या 1973 में 46,864 थी। इसमें लगभग 24% वृद्धि हुई। प्राथमिक शिक्षा का विकास यह विश्वास दिलाता है कि अनिवार्य शिक्षा का वह लक्ष्य सन् 1985-86 तक अवश्य पूर्ण हो जायेगा।

प्रश्न

1—जनतन्त्र में शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालिये।

2—प्राथमिक शिक्षा का इतिहास बताते हुए, उसके वर्तमान स्वरूप का वर्णन करें।

3—स्वतन्त्र भारत में अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई ?

4—मुद्रित प्रश्न का क्रमांक--13 रखें।

पाठ–2

बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश

बेसिक शिक्षा परिषद् की स्थापना एवं गठन :–

प्राथमिक शिक्षा को उपयोगी, सक्रिय और उपयोगी बनाने की दृष्टि से सन् 1972 एक अधिनियम द्वारा बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश की स्थापना की गई थी । परिषद् निम्नलिखित सदस्य होते हैं ।

1—शिक्षा निदेशक—पदेन अध्यक्ष ।

2—प्रदेश की जिला परिषदों के अध्यक्षों में से 2 व्यक्ति राज्य सरकार द्वा मनोनीत ।

3—प्रदेश की नगर पालिकाओं के अध्यक्षों में से एक राज्य सरकार द्वा मनोनीत ।

4—नगर महापालिकाओं के नगर प्रमुखों में से एक राज्य सरकार द्वारा मनोनीत

5—सचिव, वित्त विभाग, उत्तर प्रदेश शासन पदेन ।

6–प्राचार्य, राज्य शिक्षा संस्थान, उ० प्र०, इलाहाबाद ।

7—दो शिक्षाविद शासन द्वारा मनोनीत ।

8—एक अधिकारी राज्य सरकार द्वारा निर्दिष्ट किया जायेगा जिसका पद उप शिक्षा निदेशक से कम न होगा ।

सन् 1976 में दो सदस्यों को और बढ़ाया गया ।

1—सचिव माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश ।

2—अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षक संघ ।

इस प्रकार बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश में कुल बारह सदस्य होते हैं । इनमें सरकारी और 7 गैर सरकारी । शैक्षिक प्रशासन के लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के सि उपरोक्त विभिन्न संस्थाओं को प्रतिनिधित्व दिया गया है । प्राथमिक शिक्षा और माध्य मिक शिक्षा के उचित ढंग से समन्वय के लिए परिषद् में माध्यमिक शिक्षा परिषद् के सचि को सम्मिलित किया गया है ।

बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के कार्य—

1—बेसिक शिक्षा पर नियन्त्रण तथा उसके शैक्षिक स्तर को उन्नत बनाने का प्रय करना ।

2—बेसिक शिक्षा के लिये शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था करना ।

3—प्रदेश की समस्त शिक्षा से बेसिक शिक्षा को सम्बद्ध करना ।

4—बेसिक शिक्षा में समन्वय स्थापित करना ।

5—जिला, नगर तथा बेसिक शिक्षा समितियों द्वारा स्थापित संस्थाओं के शि स्तर मापकों का निर्धारण तथा इन समितियों द्वारा संचालित योजनाओं को मान्यता देना। नियन्त्रित करना ।

प्रश्न

1—बेसिक शिक्षा परिषद् की स्थापना एवं उसके कार्य बताइये ।

पाठ–3

(क) जिला बेसिक शिक्षा समिति

सन् 1972 के उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम में संशोधन करके 1975 में जिला बेसिक शिक्षा समिति का गठन किया गया। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार इस समिति का गठन निम्नलिखित सदस्यों द्वारा किया जाता है :–

1––अध्यक्ष जिला परिषद्––पदेन सदस्य ।

2––जिला परिषद् के सदस्यों में से तीन शासन द्वारा मनोनीत ।

3––अतिरिक्त जिला मैजिस्ट्रेट (नियोजन) पदेन ।

4––जिला हरिजन एवं समाज कल्याण अधिकारी ।

5––जिला विद्यालय निरीक्षक ।

6––विद्यालय उप निरीक्षक पदेन सहायक सचिव ।

7––अतिरिक्त बेसिक शिक्षा अधिकारी (महिला) उसकी अनुपस्थिति में उप–विद्यालय बालिका निरीक्षिका ।

8––जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी––सदस्य सचिव ।

जिला बेसिक शिक्षा समिति के कार्य––

बेसिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के निर्देशन में जिला समिति निम्नलिखित कार्य सम्पन्न करेगी ––

1––आवश्यकतानुसार नवीन विद्यालयों की स्थापना ।

2––जिले के बेसिक विद्यालयों का प्रशासन ।

3––शैक्षिक योजनाओं का निर्माण व उन्हें व्यवहारिक रूप देना ।

4––जिले के बेसिक विद्यालयों का विकास ।

5––बेसिक विद्यालयों की कठिनाइयों का निदान ।

ख ग्राम शिक्षा समिति––

उत्तर प्रदेश बेसिक शिक्षा अधिनियम के सन् 1975 के संशोधन के अनुसार प्रत्येक ग्राम सभा क्षेत्र में एक समिति के गठन की व्यवस्था की गई है । इसे ग्राम शिक्षा समिति कहा गया है ।

संगठन––

1––समिति का अध्यक्ष ग्राम सभा का प्रधान होगा ।

2––बेसिक विद्यालयों के छात्रों के तीन संरक्षक या अभिभावक जिनमें एक महिला होगी । प्रति उप विद्यालय निरीक्षक द्वारा मनोनीत किये जायेंगे ।

3––बेसिक विद्यालय का प्रधानाध्यापक एक से अधिक विद्यालय होने पर वरिष्ठतम प्रधानाध्यापक उस समिति का सदस्य सचिव होगा ।

ग्राम शिक्षा समिति के कार्य––

1––बेसिक विद्यालयों के भवनों और उनके उपकरणों में सुधार के लिये जिला बेसिक शिक्षा समिति को सुझाव देना ।

2––अपने क्षेत्र के बेसिक विद्यालयों का निरीक्षण करना ।

3––जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी से सम्पर्क रखना ।

4––अध्यापकों/अध्यापिकाओं की उपस्थिति और समय पर आने के विषय में जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को सूचना देना ।

प्रश्न

1––जिला बेसिक शिक्षा समिति का गठन एवं उसके कार्यों पर प्रकाश डालिये ।

पाठ—4

प्रधानाध्यापक/अध्यापक के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व

प्रधानाध्यापक विद्यालय का केन्द्र बिन्दु है । विद्यालय की समस्त क्रियायें और विद्यालय का समस्त जीवन उसी पर आधारित है । विद्यालय का समस्त संचालन, संगठन एवं व्यवस्था मुख्यरूप से उसी पर आधारित है । किसी विद्यालय की प्रतिष्ठा और समाज की दृष्टि में उसका स्थान इस बात पर निर्भर रहता है कि उस विद्यालय का प्रधानाध्यापक अपने सहयोगी अध्यापक वर्ग, विद्यार्थी वर्ग, अभिभावक वर्ग तथा साधारण नागरिकों पर कितना प्रभाव पड़ता है । इसी प्रकार विद्यालय का अनुशासन और उसकी स्वस्थ परम्परायें प्रधानाचार्य के विशेष उत्तरदायित्व हैं ।

प्रधानाध्यापक के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व अनेक हैं :—

1—अध्यापक के रूप में—प्रधानाध्यापक को अधिक कार्य करने पड़ते हैं फिर भी कक्षा अध्यापन करना अनिवार्य है जिससे वह विद्यार्थियों के सम्पर्क में भी बना रहे । उसे कम से कम एक नीचा, एक मध्य की तथा एक उच्च कक्षा नियमित रूप से पढ़ानी चाहिये । इससे उसका विभिन्न स्तरों के छात्रों से परिचय होगा ।

2—सामान्य निरीक्षण सम्बन्धी—प्रधानाध्यापक को यह देखना चाहिये कि विभिन्न रजिस्टर रोकड़ पुस्तक में दिन प्रति दिन का लेखा जोखा कहां रक्खा जा रहा है । रजिस्टर लिपिक एवं अध्यापक भरते हैं किन्तु हस्ताक्षर प्रधानाध्यापक को ही करना पड़ता है । और अन्तिम उत्तरदायित्व उसी का हो जाता है । अस्तु विद्यालय के सभी अभिलेखों को सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करके उसेहस्ताक्षर करने चाहिये ।

3—अध्यापन कार्य का निरीक्षण—अध्यापन कार्य सुचारु रूप से हो रहा है यह देखने के लिये प्रधानाध्यापक को समय-समय पर अध्यापन के समय कक्षा में जाना चाहिये । परन्तु कक्षा में आलोचक के रूप में न जाकर मित्र और सहायक के रूप में जाना चाहिये । कक्षा में उसे आलोचना न करनी चाहिये । यदि निर्देशन जरूरी हो तो उसे कार्यालय में बाद में बात करनी चाहिये ।

4—लिखित कार्य—छात्रों के लिखित कार्य का निरीक्षण भी उसे करना चाहिये । इससे उसे शिक्षक की अध्यापन प्रणाली तथा कार्य का ज्ञान होगा ।

5—आदर्श पाठ—अध्यापन प्रणाली को उच्चतर बनाने के लिये कभी-कभी आदर्श पाठ का भी आयोजन करना चाहिये जिसमें उसे भी भाग लेना चाहिये ।

ट्यूशन—अध्यापकों के प्राइवेट ट्यूशन पर भी नियंत्रण रखना चाहिये । जहां तक हो सके शिक्षक को अनुमति ही न देनी चाहिए अन्यथा अध्यापक अपना बहुत सा समय इस में दे देंगे ।

परीक्षायें—प्रधानाध्यापक का यह विशेष कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि प्रश्न पत्र पाठ्य पुस्तक तथा निर्धारित पाठ्य क्रम के सभी अंशो पर निर्धारित हैं । उसे यह भी देखना चाहि कि प्रश्न पत्र पर समय की अवधि निर्धारित अंक तथा वैकल्पिक प्रश्न भी छपे हैं ॥

विद्यालयी प्रगति के लिये भी प्रधानाध्यापक उत्तरदायी है । अतः नैतिक वातावरण छात्रों की शारीरिक मानसिक और भौतिक उन्नति की ओर भी विशेष ध्यान देना चाहिये पाठ्य पुस्तकें भी अध्यापकों के परामर्श से ही चुनी जानी चाहिये ।

छात्रावास—यदि छात्रावास हो तो समय-समय पर उसका निरीक्षण भी जरूरी है छात्रावास के सभी पहलुओं का निरीक्षण समय-समय पर करना चाहिये । छात्रावास में छात्

के कमरे, भोजनालय, स्नानागार, मूत्रालय, शौचालय, खेल के मैदान तथा आस-पास का निरीक्षण कर आवश्यक निर्देश देना चाहिये। अभिभावकों को समय-समय पर आमंत्रित करते रहना चाहिये जिसमें विद्यालय की साधारण नीति का स्पष्टीकरण करना चाहिए तथा विद्यालयी सुधार के लिये उनसे सुझाव मांगने चाहिये। विद्यालय की ध्वनि (Tone of the school) अच्छी होनी चाहिये। क्योंकि छात्रों के अच्छे आचरण तथा चरित्र की नीव विद्यालय काल ही में पड़ जाती है।

प्रधानाध्यापक विद्यालय का कर्णधार व छात्रों एवं अध्यापकों का पथ प्रदर्शक होता है। कक्षा के बाहर चलने वाले क्रिया-कलापों का निरीक्षण भी करते रहना चाहिये। बालचर, गाइड, नाटक, साहित्य, परिषद्, बाल सभा, कुमारी सभा आदि में कभी-कभी स्वयं भी भाग लेना चाहिये।

विद्यालय भवन के कमरे आस-पास की स्वच्छता पर भी ध्यान देना चाहिये। समाज में प्रचलित बुराइयों को दूर करने का सतत प्रयास करना चाहिये। उसे ऊंचे चरित्र का होना चाहिये। जिससे वह प्रेरणादायक हो। विद्वान होने के साथ ही कुशल प्रबन्धक होना भी जरूरी है।

प्रधानाध्यापक के गुण-

विद्यालयों में प्रधानाध्यापक की स्थिति वही है जो सेना में सेनापति की होती है वह विद्यालय का प्राण है। उसके व्यक्तित्व आदर्श और विचार की छाप विद्यालय के प्रत्येक कार्य और व्यक्ति पर पड़ती है। उसी की नीति के आधार पर विद्यालय समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

प्रधानाध्यापक विद्यालय का कर्णधार होता है। वह छात्रों और अध्यापकों का मार्ग दर्शक होता है अतः उसमें कुछ गुणों की अपेक्षा की जाती है :

प्रधानाध्यापक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :

1--उच्च चरित्र--प्रधानाध्यापक को ऐसे चरित्र का होना चाहिये कि सभी अध्यापक एवं छात्र उससे प्रेरणा ले सकें।

2--शिष्टता--प्रधानाध्यापक का आचार व्यवहार और मुद्रा ऐसी हो कि उससे शिष्टता टपके और सभी लोग उसे श्रद्धा और आदर की दृष्टि से देखें।

3--आशावादी--प्रधानाध्यापक को आशावादी होना चाहिये जिससे वह शिक्षकों और छात्रों को समय-समय पर प्रोत्साहन देता रहे उसे अपने जीवन में रुचि और मानव शक्ति में विश्वास होना चाहिये। उसको यह धारणा होनी चाहिए कि परिश्रम से व्यक्ति जीवन में कुछ भी कर सकता है।

4--प्रेरणादायक--प्रधानाध्यापक को दूसरों को प्रेरणा देने में समर्थ होना चाहिये उसमें दूसरों की सुप्त शक्तियों को जागृति करने की क्षमता होनी चाहिये।

5--स्वास्थ्य--उत्तम स्वास्थ जीवन में सफलता की कुंजी है। अतः दूसरों को प्रफुल्लित करने के लिये उसे स्वस्थ रहना चाहिये।

6--आदर्श--प्रधानाध्यापक को उच्च आदर्श का व्यक्ति होना चाहिये तभी वह छात्रों और अध्यापकों के लिये अनुकरणीय होगा और उन्हें उच्च आदर्शों का अनुरागी बना सकेगा।

7--विद्वता--प्रधानाध्यापक को अपने विषय का प्रकाण्ड विद्वान होना चाहिये साथ ही साथ अन्य विषयों का ज्ञाता भी होना चाहिये। जिससे वह अपने सहयोगियों को समय-समय पर मार्ग दर्शन करता रहे। प्रधानाध्यापक के पास अच्छी पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं का अच्छा संकलन होना चाहिये। जिससे वह नई बातों की जानकारी रख सके।

8--मानव मात्र में रुचि--प्रधानाध्यापक को विभिन्न रुचि वाले छात्रों एवं अध्यापकों के सम्पर्क में रहना चाहिये जिससे वह उनकी समस्याओं को हल करने में सफल हो सके ।

9--प्रबन्ध सम्बन्धी योग्यता--प्रधानाध्यापक को एक कुशल प्रबन्धक होना चाहिये छात्रों, शिक्षकों, लिपिकों तथा अन्य कर्मचारियों की क्षमता का पूर्ण उपयोग करना चाहिये । क्योंकि विद्यालय की उन्नति कुशल प्रबन्ध पर ही निर्भर करती है ।

10--व्यावसायिक ज्ञान--प्रधानाध्यापक को शिक्षा सम्बन्धी समस्त साहित्य का अच्छा ज्ञान होना चाहिये उसे शिक्षा संहिता तथा शिक्षा विभाग के विभिन्न विषयों का ज्ञान होना चाहिये । विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के उद्देश्यों का भी ज्ञान होना चाहिये ।

11--कार्य क्षमता--जनतंत्रात्मक विचार धारा के अन्तर्गत छोटे-छोटे अपराधों के लिये भयानक दंड नहीं देना चाहिये अतः विषय परिस्थितियों में बहुत ही सोच विचार के पश्चात ही निर्णय लेना जरूरी है । सबसे अलग-अलग न रहकर छात्रों एव शिक्षकों की समस्याओं एवं उनकी प्रार्थनाओं पर पूर्ण विचार के बाद ही निर्णय लेना चाहिये जिसका उद्देश्य छात्रों को परीक्षा उत्तीर्ण करना न होकर जीवन के लिय तैयार करना है ।

12--सुधार लाने में शीघ्रता नहीं--विद्यालय में कोई भी सुधार करने के पूर्व छात्रों एवं अध्यापकों एवं यथा सम्भव अभिभावकों से परामर्श अवश्य कर लेना चाहिये जिससे उसके कार्य में किसी भी प्रकार की बाधा न हो ।

प्रधानाध्यापक का समाज से सम्बन्ध--हमारे समाज में शिक्षा की कमी के कारण अनेक दुर्बलतायें आ गई हैं । अतः प्रत्येक प्रधानाध्यापक का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह अपने वातावरण की इन दुर्बलताओं को समझे और उन्हें दूर करने के लिये छात्रों एवं अध्यापकों को नियोजित करें । समाज सेवा के विविध अवसरों को उसे पकड़ना चाहिये तभी वह अधिक से अधिक हित समाज का कर सकता है । आज हमारे समाज में साम्प्रदायिकता प्रांतीयता, जातीयता, परदाप्रथा, बाल विवाह, गंदी राजनीति, अनैतिकता बेईमानी, अनुशासन, हीनता और अशिष्ठ व्यवहार आदि दुर्बलतायें फैली हुई है । इनकी ओर छात्रों और शिक्षकों का ध्यान आकर्षित करना प्रधानाध्यापक का परम कर्त्तव्य है ।

प्रधानाध्यापक को भी अपने को एक अध्यापक समझना चाहिये । उसका पद भले ही अन्य अध्यापकों से ऊंचा है । और उसे अन्य अध्यापकों की आलोचना एवं निर्देश देने का अधिकार है किन्तु उसे अपने सहयोगियों के प्रत्येक कार्य में हाथ बटाना चाहिये । तभी वह समाज में फैले हुये भ्रष्टाचार और बुराइयों को दूर करने में सफल हो सकता है । प्रधानाध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिये कि उसे केवल छात्रों को ही नहीं वरन् पूरे समाज को शिक्षित करना है । और इस धारणा को उसे अपने अन्य सहयोगियों को भी देना चाहिये । आज हमारे देश के विद्यालयों को ऐसे प्रबुद्ध एवं जागरुक समाज सेवी प्रधानाध्यापक की आवश्यकता है । जो समाजोत्थान में अपना तथा अपने सहयोगियों का सर्वस्व लगा सके ।

अध्यापक का उत्तरदायित्व एवं कर्त्तव्य--प्राचीन काल से ही अध्यापक का पद विशिष्ट एवं सम्मानित रहा है तथा समाज में उसको महत्व एवं गौरव प्राप्त है । आधुनिक अर्थ में भी अध्यापक नवीन पीढ़ी का निर्माता नवीन राष्ट्र का निर्माता तथा भावी नागरिकों का निर्माता आदि नामों से विभूषित किया जाता है । वास्तव में अध्यापक समस्त शिक्षा व्यवस्था की धुरी है । कोई भी शिक्षा योजना अध्यापक के बिना अपूर्ण है । अध्यापक की तुलना कुशल माली, कुशल कुम्हार, कुशल कारीगर तथा कुशल मार्ग दर्शक आदि से की गई है । विद्यालय भवन में प्राण फूंकने के लिये कुशल अध्यापक की साधना जरूरी है ।

आधुनिक शिक्षा में अध्यापक का पद अधिक महत्वपूर्ण एवं पहले से अधिक उत्तरदायित्व [पूर्ण] हो गया है। मनोविज्ञान के अध्ययन एवं शोधों ने अध्यापक के कार्य एवं उत्तरदायित्व के [नये]-नये दृष्टिकोण उपस्थित किये हैं। समाज उनसे नवीन आशायें रखता है।

आधुनिक शिक्षा बाल केन्द्रित है। बालक उपादान के रूप में एक सजीव प्राणी है। [इ]स सजीव प्राणी में नैसर्गिक शक्तियां उपस्थित हैं। और उनके विकास के लिये समुचित [वा]तावरण की आवश्यकता है। इस वातावरण का सृजन अध्यापक का उत्तरदायित्व है। सर्वांगीण [वि]कास के समुचित निर्देशन एवं पथ प्रदर्शन की भी आवश्यकता है। बालक के सर्वांगीण [वि]कास के लिये अध्यापक उत्तरदायी है। बालक की शारीरिक मानसिक आध्यात्मिक संवेगात्मक [त]था ज्ञानात्मक शक्तियों का अपनी सामर्थ्य के अनुसार चरम उत्कर्ष ही आधुनिक अध्यापक को [सं]तुष्ट कर सकता है। आत्म संतुष्टि ही साधक की साधना का प्रमुख लक्ष्य होती है। साधक [के] रूप में अध्यापक को यह अनुभव होना चाहिये कि उसकी साधना पूर्णतया सफल [ह]ई है।

अध्यापक का प्रमुख कार्य है अध्यापन। अतः अध्यापन कार्य में सफल होने के लिये [उ]सको विद्याव्यसनी होना आवश्यक है। विषय में पारगत होना विषय पर पूर्ण अधिकार [वि]षय का सम्यक् ज्ञान अध्यापक की सर्वोपरि आवश्यकता है। इसके साथ ही उसको सामान्य [ज्ञा]न भी उच्च कोटि का होना चाहिये।

अध्यापक के गुण—आज की शिक्षा बाल केन्द्रित है। अध्यापक पथ प्रदर्शन के रूप में [बा]लक के साथ रहता है और शिक्षा की सफलता उसकी निर्देशन शक्ति तथा प्रणाली पर ही [नि]र्भर करती है। अतः अध्यापक में कुछ गुणों का होना आवश्यक है :—

1—उत्तम चरित्र—बालक शिक्षक के निकट सम्पर्क में रहता है वह उसे आदर्श मानकर अनुकरण करता है अतः शिक्षक को चरित्रवान, परिश्रमी, कर्तव्य परायणी, परोपकारी, सत्यवादी, तथा सतत् विचारों वाला होना चाहिये जिससे बच्चों पर उसकी अमिट छाप पड़े।

2—बच्चों से प्रेम—शिक्षक को स्नेही होना भी जरूरी है। उसके हृदय में बालकों के लिये दया, माया, ममता और प्रेम होना चाहिये।

3—दीक्षित होना—शिक्षक को बाल मनोविज्ञान का ज्ञान होना जरूरी है। जिससे वह अध्यापन कार्य सफलता पूर्वक कर सके।

4—कर्तव्यपरायणता—शिक्षक को कर्तव्य परायण होना भी बहुत जरूरी है तभी वह बच्चों के सामने आदर्श रख सकेगा।

5—विषय में पारंगत—अपने विषय के पूर्ण ज्ञान के साथ ही साथ उसे सामान्य ज्ञान का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये जिससे वह समय-समय पर छात्रों की जिज्ञासा एवं शंकाओं का तुरन्त समाधान कर सके।

6—आशावादिता—शिक्षक को आशावादी होना चाहिये तथा छात्रों के सम्बन्ध में धैर्य से काम लेना चाहिये यदि छात्र किसी बात को समझने में असमर्थ हैं तो उन्हें धैर्यपूर्वक समझाना चाहिये और यह विश्वास रखना चाहिये कि अन्त में उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

7—पाठ्येत्तर क्रिया कलाप में रुचि—अपने विषय के अतिरिक्त अन्य विषयों तथा क्रिया कलापों में भी शिक्षक की रुचि होनी चाहिये। तभी वह बालक का सर्वांगीण विकास कर सकेगा।

8—विनोदशील—अध्यापन कार्य कठिन होता है अतः कठिन अवसरों पर उसे प्रसन्नचित्त रह कर कक्षा की नीरसता को दूर करना चाहिये। इससे बालकों पर भी अध्यापक का प्रभाव पड़ेगा। और बालक भी प्रसन्नचित रहेंगे।

9--स्वास्थ्य--स्वास्थ ही सब गुणों की जड़ है यदि शिक्षक का स्वास्थ्य अच्छा है तो उसमें विभिन्न गुणों का स्वतः विकास होगा। स्वस्थ अध्यापक के सम्पर्क में आकर छात्र भी अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाने का प्रयास करेंगे और प्रसन्नचित्त होकर विद्यालय के प्रत्येक क्रिया कलाप में भाग लेंगे।

10--आदर्श व्यक्तित्व--अध्यापक के आदर्श व्यक्तित्व से छात्र प्रभावित होते हैं और उसके सम्पर्क में आकर अन्य उपयोगी बातें सीखने के लिये लालायित रहते हैं।

11--धैर्यशीलता--अध्यापक को धैर्यवान होना चाहिये उसे कठिनाइयों से लड़ने के लिये तैयार रहना चाहिये अपने सम्पर्क में आने वाले छात्रों में भी वह ऐसी प्रवृत्ति डालने में समर्थ होता है।

12--मौलिकता--अध्यापक में इस गुण के होने से वह किसी समस्या के मौलिक सुझाव निकाल सकता है। और इस प्रकार बालकों को भी मौलिकता की ओर अभिप्रेरित करता रहेगा।

13--शीघ्र निर्णय--विद्यालय में कई ऐसे अवसर आते हैं जहां शीघ्र निर्णय करने की आवश्यकता होती है अतः अध्यापक में इस शक्ति का होना जरूरी है अन्यथा छात्रों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा।

14--आत्मसम्मान--अध्यापक में यह गुण बहुत जरूरी है आत्म विश्वास व आत्म सम्मान उसे बहुत आगे बढ़ा सकता है।

15--प्रखर अन्वेषण शक्ति--कक्षा में विभिन्न प्रकार के छात्र होते हैं तदनुसार उनकी समस्यायें भी विविध होती हैं। प्रखर अन्वेषण शक्ति वाला अध्यापक कक्षा में पाये जाने वाले वैयक्तिक वैभिन्य को समझकर उसके लिये सम्मुचित उपाय कर सकता है।

अध्यापक को बालक आदर्श व्यक्ति समझता है। अतः अध्यापक में विभिन्न गुणों का होना आवश्यक है। उसका चरित्र ऊंचा होना चाहिये तभी बच्चे उसका अनुकरण कर देश के अच्छे नागरिक बन सकेंगे।

प्रश्न

1--"विद्यालय में प्रधानाध्यापक का कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है" स्पष्ट व्याख्या कीजिये।

2--अध्यापक के गुण एवं कर्तव्य पर प्रकाश डालिये।

3--विद्यालय संगठन में प्रधानाध्यापक का क्या महत्व है ? उसके प्रमुख कार्यों व कर्तव्यों पर प्रकाश डालिये।

पाठ–5

बृहत् कक्षा शिक्षण

बृहत कक्षा का स्वरूप––

बढ़ती जनसंख्या के कारण अनिवार्य शिक्षा योजना के क्षेत्र में विशेष सफलता नहीं मिली, अनेक विद्यालयों की स्थापना तो की गई परन्तु सीमित साधनों के कारण उनमें छात्रों के पठन की समुचित व्यवस्था न हो सकी, इधर विभिन्न साक्षरता आन्दोलन तथा शिक्षा प्राप्त करने की जन रुचि के प्रबल हो जाने के कारण छात्र–संख्या में पर्याप्त वृद्धि हुई । एक ओर छात्र संख्या में तीव्रता से वृद्धि हुई दूसरी ओर इस अनुपात में नवीन शिक्षकों की नियुक्ति न हो सकी । विद्यालयों में छात्रों के प्रवेश को नियमित करना लोकतंत्र तथा संविधान की मूल भावना के विरुद्ध है । अतः बढ़ती छात्र संख्या की समस्या को हल करने के लिये वृहत कक्षा के स्वरूप को अपनाना एवं एक प्रकार से अनिवार्य हो गया । इन कक्षाओं में छात्रों की संख्या औसत से अधिक होती है अतः इनमें त्रुटियां आना स्वाभाविक है ।

दोष –इस प्रणाली में कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक होती है इस कारण अध्यापक कक्षा में अनुशासन स्थापित करने में कठिनाई होती है ।

2––संख्या अधिक होने से अध्यापकों को छात्रों की व्यक्तिगत समस्यायों को नहीं सुलझा सकता ।

3––बल केन्द्रित न होकर यह प्रणाली कक्षा केन्द्रित हो जाती है ।

4––अध्यापक तथा छात्र के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता ।

5––अध्यापक क्रियाशील रहता है किन्तु छात्रों को क्रियाशील नहीं रख पाता। वे मात्र मूक दर्शक रह जाते हैं ।

6––लिखित और मौखिक अभ्यास कार्य बड़ी कक्षा में नहीं कराया जा सकता ।

7––लिखित कार्य का संशोधन शिक्षक उचित रूप से नहीं कर पाता ।

सुधार के सुझाव––राज्य शिक्षा संस्थान ने इन त्रुटियों को दूर करने के सुझाव दिये हैं ।

1––बृहत् कक्षा को वर्गों में विभाजित किया जाना चाहिये ।

2––विभाजन योग्यता एवं रुचि के अनुसार होना चाहिये ।

3––कक्षायें बड़े कक्ष में तथा बैठने के लिये पर्याप्त साधन होने चाहिये ।

4––शिक्षण टोली नामक की सहायता से किया जाय कक्षा के एक वर्ग को जब शिक्षक पढ़ा रहा हो टोली नामक उसी समय दूसरे वर्ग को लिखित कला शिल्प आदि में व्यस्त रखें ।

5––वर्गानुसार विभिन्न विषयों की समय तालिका बनाई जाय और निश्चित कर लिया जाय कि प्रत्येक वर्ग को अध्यापक कितना समय देगा ।

6––अध्यापकों का स्थानान्तरण शीघ्र न किया जाय ।

7––मानीटर का चयन सावधानी से किया जाय ।

प्रश्न

8––बृहत कक्षा शिक्षण की आवश्यकता और विशेषता को बताइये ।

पाठ–6

निवर्गशाला पद्धति

निवर्गशाला पद्धति––

प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमिक तथा निःशुल्क बनाने वाली सबसे बड़ी बाधा ह्रास तथा अनुरोध की है । यह सत्य है कि सरकारी प्रयासों के परिणाम स्वरूप 6 से 11 वर्ष 83·9 प्रतिशत बालक विद्यालय जाने लगे हैं परन्तु लगभग 8·5 प्रतिशत बालक या तो शिक्षा पूरी ही नहीं करते अर्थात् बीच में ही विद्यालय छोड़ देते हैं या एक ही कक्षा में अनुत्तीर्ण होते रहते हैं । इस दोष को दूर करने के लिये कक्षा 1 या 2 में निवर्गशाला पद्धति को अपनाया गया है । निवर्गशाला से तात्पर्य है कि छात्राओं का वर्गीकरण वर्गों में करने की अपेक्षा विषय योग्यता के आधार पर किया जाय ।

विशेषता––इसमें बालकों की परम्परागत परीक्षा के आधार पर कक्षोन्नति नहीं दी जाती अपितु उनकी दैनिक, साप्ताहिक, सामाजिक तथा त्रैमासिक प्रगति के आधार पर उन्नति प्रदान की जाति है ।

2––इसमें किसी नवीत पाठ्यक्रम की आवश्यकता नहीं होती किसी भी प्रचलित पाठ्यक्रम का प्रयोग किया जा सकता है ।

3––छात्राओं को अपनी योग्यता, क्षमता तथा प्रतिभा के अनुसार कार्य करने का अवसर दिया जाता है ।

4––तीव्र बुद्धि बालक अपने समय की बचत कर लेता है तथा मन्द गति बालक भी अपनी गति से बढ़ते हैं ।

5––इसमें पाठ्यक्रम व क्रिया–कलापों को संगठित कर दिया जाता है । तथा परिस्थिति अनुसार अतिरिक्त सामग्री व क्रिया–कलापों को सम्मिलित कर दिया जाता है ।

6––प्रत्येक बालक के विषय व क्रिया–कलाप के अनुसार योग्यता व प्रगति का अभिलेख रखा जाता है ।

प्रश्न

1– निवर्गशाला पद्धति की क्यों आवश्यकता हुई तथा प्राथमिक शिक्षा में यहां–कहां तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है ?

2––निवर्गशाला पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये :––

पाठ–7

उपचारात्मक शिक्षण

उपचारात्मक शिक्षा क्या है––

कुछ ऐसी समस्यायें हैं जो सामान्यतः प्रत्येक विद्यालय की व्यवस्था एवं शिक्षण में बाधक हैं। जिसमें मन्द बुद्धि एवं पिछड़े हुए बालकों की समस्या प्रमुख है। प्रत्येक कक्षा में बड़ी संख्या में छात्र एक साथ शिक्षण प्राप्त करते हैं। जिसमें विभिन्न स्तर के बालक होते हैं। कुछ छात्र ऐसे होते हैं जो पाठ्यक्रम के एक या अधिक विषय में मन्द होते हैं। यह पिछड़ापन अथवा विभिन्नता अनेक कारण से उत्पन्न होती है जिसमें अस्वस्थता की दशा में विद्यालय से अनुपस्थिति।

शारीरिक दोष अथवा हीन ग्रंथि या किसी प्रकार की कुंठा या भावना ग्रंथि ऐसे छात्रों के पिछड़ेपन के कारणों को ज्ञात कर उनकी त्रुटियों का निराकरण करने के लिए अतिरिक्त शिक्षण व्यवस्था ही उपचारात्मक शिक्षण है।

उपादेयता––

छात्रों में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं जैसे अवांछनीय आचरण, झूठ बोलना, धोखा देना, आवारा घूमना, अनुचित दिखावा करना यह दोष पाठों में पिछड़े हुए छात्रों में अन्य छात्रों की अपेक्षा अधिक मिलते हैं। पाठशाला के कार्य में उन्नति और छात्र के मानसिक कार्य में घनिष्ठ सम्बन्ध है केवल वाचन में दोष के कारण आत्म विश्वास की कमी और चिन्ता बनी रहती है। इसका प्रभाव पाठशाला के समस्त कार्य में पड़ता है। यह वाचन की कमजोरी बालक में अन्य विषयों में भी मन्दता का कारण है। अतएः यह आवश्यक है कि इस प्रकार पिछड़े हुए छात्रों को उनके पिछड़े पाठों और उनकी कमियों को दूर करने में विद्यालय सहायता करे यही कार्य सुधारमूलक या चिकित्सात्मक अध्यापन कहलाता है।

मन्दता के कारणों के निवारण हेतु शिक्षक के कार्य––चिकित्सात्मक शिक्षण के पहले मन्द बुद्धि छात्रों की एक सूची बनानी चाहिए।

2––मन्दता के विषय और प्रकरण तथा कारण ज्ञात करने चाहिए, मन्दता के कारण जैसे––आंगिक विकार, मानसिक विकार या बुद्धि की न्यूनता, लिपि परिवर्तन, वंशानुगत दोष, वातावरण, जन्य विकार, अत्यधिक आत्म विश्वास, सुविधाओं की कमी, सांवेगिक विकार, पाठ सहगामी क्रियाओं में अधिक व्यस्तता, प्रान्तीयता का प्रभाव, पाठ में रीरसता, अध्यापक का डर, पाठशाला से लम्बी अनुपस्थिति, पिछली कक्षाओं की कमजोरी।

3––अध्यापकों को मन्द छात्रों की भूलों और कमजोरियों के मूल स्रोतों को जानना चाहिए।

4––इस विषय में मनोविज्ञान से सहायता मिल सकती है। अतः शिक्षक को बाल मनोविज्ञान से अवगत होना चाहिए।

उपादेयता––

1––छात्रों में श्रेष्ठ आदतों का विकास करना, तथा गलत आदतों को श्रेष्ठ दिशा में मोड़ना (मार्गान्तरीकरण)।

2––छात्र का ध्यान उनकी त्रुटियों की ओर आकर्षित करना।

3--छात्रों में यह आस्था उत्पन्न करना कि उपचारात्मक शिक्षण द्वारा उनकी त्रुटियाँ दूर हो सकती हैं। तथा वे भी कक्षा के समान स्तर पर आ सकते हैं।

4--ज्ञान सम्बन्धी दोषों का निराकरण करना।

5--बालक में सद्गुणों का विकास।

6--बालक के मानसिक तनाव व संघर्षों को दूर करना।

7--बालक की प्रगति में बाधक अशुद्धियों का निराकरण करना।

8--संवेगात्मक तथा सामाजिक दोषों का उपचार करना।

9--अधिगम्य सम्बन्धी ग्राहक शक्तियों में बाधक तत्व की खोज तथा निराकरण।

अधिकांश मनोवैज्ञानिकों के अनुसार पिछड़े बालकों की समस्या हल करने के लिए उपचारात्मक शिक्षण आवश्यक है।

प्रश्न

1--उपचारात्मक शिक्षण किसे कहते हैं ? विस्तार पूर्वक समझाकर लिखिये।

2--उपचारात्मक शिक्षण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

3--उपचारात्मक शिक्षण की उपादेयता पर प्रकाश डालिये।

पाठ--8

मिश्रित विद्यालय एवं मिश्रित स्टाफ

मिश्रित विद्यालय वे विद्यालय हैं जहां बालक व बालिकाएं साथ-साथ शिक्षा प्राप्त करते हैं। मिश्रित विद्यालयों का प्रचलन मुख्यतया प्राथमिक स्तर पर ही अधिक है। मिश्रित व्यवस्था से निम्नलिखित लाभ हैं--

(1) प्राथमिक स्तर तक मिश्रित व्यवस्था से कोई हानि नहीं होती वरन् बालक व बालिकाएं सहयोग से कार्य करना सीखते हैं।

(2) सामाजिक भावनाओं का विकास होता है। आर्थिक दृष्टि से भी मिश्रित विद्यालय उपयोगी है।

(3) प्रशासन की दृष्टि से यह व्यवस्था अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि इसमें दोनों की शिक्षा के लिए अलग से व्यवस्था की आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

(4) बालक बालिकायें परस्पर एक दूसरे के सहज गुणों से परिचित होती हैं।

सुधार के सुझाव---(1) मिश्रित स्कूलों के पर्याप्त भवन होना चाहिये जिससे लड़के-लड़कियों की आवश्यकता पूरी की जा सके।

(2) शौचालय और मूत्रालय बालक बालिकाओं के अलग-अलग होना चाहिए।

(3) शिक्षिकाओं की संख्या अधिक होनी चाहिए। कम से कम 20 बालिकाओं पर एक शिक्षिका होनी चाहिए।

(4) मिश्रित विद्यालयों में मिश्रित शिक्षक वर्ग हो तो उचित है।

(5) पाठ्यक्रम विविधता हो जिससे छात्र और छात्रायें अपनी रुचि के अनुसार चुनाव कर सकें। जैसे छात्राओं के लिए विशेषकर संगीत, चित्रकला, नृत्य, गृह विज्ञान आदि के शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए।

मिश्रित अध्यापक मण्डल---जब किसी विद्यालय के अध्यापक मण्डल के पुरुष और महिला दोनों ही सदस्य होते है तो उसे मिश्रित अध्यापक मण्डल कहा जाता है। इस प्रकार मिश्रित अध्यापक मण्डल में पुरुष और महिला दोनों ही सम्मिलित होकर कार्य करते हैं।

मिश्रित अध्यापक मण्डल भी एक अनिवार्यता है। मुख्यतया मिश्रित विद्यालय में जहां बालक-बालिकायें साथ पढ़ते हैं। वहां अध्यापकों के साथ अध्यापिकाओं की नियुक्ति अच्छी रहती है।

मिश्रित अध्यापक मण्डल के अपने अलग लाभ हैं। मिश्रित विद्यालयों में अध्यापिकाओं के उपस्थित रहने से बालिकायें एक प्रकार की सुरक्षा का अनुभव करती हैं और वे निःसंकोच अपनी समस्याओं को प्रस्तुत कर सकती हैं। छोटे-छोटे बालक भी महिलाओं के प्रति विशेष अनुराग भावना रखते हैं और महिलायें भी अल्प आयु के बालकों के शिक्षण में कुशल होती हैं। वास्तव में मिश्रित अध्यापक मण्डल से विद्यालय परिवार का लघु रूप हो जाता है। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो महिलाओं की अपेक्षा पुरुष ही सफलतापूर्वक कर सकते हैं। इस प्रकार पुरुष, महिलायें दोनों ही एक दूसरे के पूरक होकर कार्य करते हैं।

प्रश्न

1--मिश्रित विद्यालय किसे कहते हैं ? इनके सुधार के सुझाव बताइये।

3--प्राथमिक शिक्षा में मिश्रित विद्यालय की रूपरेखा स्पष्ट करें।

3--मिश्रित विद्यालय एवं मिश्रित स्टाफ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

पाठ---9

विद्यालय संकुल

विद्यालय संकुल के निर्माण का सुझाव कोठारी कमीशन ने दिया था। आयोग का विचार था कि शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए विद्यालय संकुलों का निर्माण करना आवश्यक है। इस प्रकार के संकुल शिक्षा के गिरते स्तर को उठाने में सहायक होंगे तथा छात्रों के अन्दर सहयोग और एकता की भावना का विकास करेंगे।

विद्यालय संकुल का उद्देश्य--

(1) शिक्षा संस्थाओं से शैक्षिक क्रियाओं को सम्बद्ध करना।

(2) शिक्षा के निम्न स्तर से लेकर उच्च स्तर तक पृथक्करण की भावना को समाप्त करना।

(3) शैक्षिक स्तर के उन्नयन के लिए शिक्षा संस्थाओं द्वारा छोटे-छोटे समूहों में कार्य करना।

(4) कम योग्यता प्राप्त शिक्षकों के शैक्षिक स्तर का उन्नयन करना।

विद्यालय संकुल का संगठन--

(1) प्रथम प्रकार का संकुल--एक समिति का निर्माण किया जाय जिसका अध्यक्ष जूनियर हाई स्कूल का अध्यक्ष हो। उस क्षेत्र के प्राथमिक विद्यालय उसके सदस्य हों। इस समिति द्वारा ही विद्यालयों के संकुलवत् विकास योजना कार्य को चलाया जाय।

(2) द्वितीय प्रकार का संकुल--इस संकुल में उच्चतर माध्यमिक विद्यालय से सम्बन्धित उक्त क्षेत्र के तीन चार जूनियर हाई स्कूल होंगे। इसकी समिति का गठन उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में होगा, जिसके सदस्य जूनियर हाई स्कूलों के प्रधानाध्यापक होंगे। इस समिति का प्रमुख कार्य योजना बनाना तथा अपने से सम्बन्धित विद्यालयों का मार्गदर्शन करना होगा।

विद्यालय संकुल के कार्य--

(1) परस्पर सहयोग से विद्यालय की उन्नति करना।

(2) शिक्षण के सुधारने के लिए श्रेष्ठ अध्यापकों द्वारा आदर्श पाठों की योजना तैयार करना।

(3) गोष्ठियों का आयोजन कर विद्यालय विकास योजनाओं पर विचार विमर्श करना।

(4) पी० टी०, स्काउटिंग आदि के सामूहिक प्रदर्शन तथा उपयोगिताओं का आयोजन करना।

(5) विद्यालय उन्नयन के लिए सामान्य प्रणाली को अपनाना।

(6) सहायक तथा श्रव्य-दृश्य सामग्रियों के परस्पर आदान-प्रदान का आयोजन करना।

(7) संकुल से सम्बद्ध विद्यालयों को योग्य अध्यापकों की सेवाओं से लाभ उठाने के अवसर प्रदान करना।

प्रश्न

1--विद्यालय संकुल किसे कहते हैं ? संक्षेप में समझाकर लिखिये।

2--विद्यालय संकुल के कार्य का वर्णन कीजिये।

3--विद्यालय संकुल पर टिप्पणी लिखिये।

पाठ--10

संस्थागत नियोजन

संस्थागत नियोजन के अर्थ पर प्रकाश डालते हुये श्री जे० सी० अग्रवाल लिखते हैं, "संस्थागत नियोजन एक विस्तृत बहुमुखी कार्य योजना है, जो संस्था की कमियों और खराबियों पर प्रहार करती है। यह एक ऐसा कार्यक्रम प्रस्तुत करती है जो वांछित शैक्षिक उपलब्धियों को प्राप्त करने के उपायों को ढूंढने में सहायता देती हो। इस कार्यक्रम में संस्था के वे समस्त क्रिया कलाप शामिल हैं जिनसे संस्था का सर्वांगीण विकास होता है। इस प्रकार की योजना को तैयार करने में प्रधानाध्यापक अपने सहयोगियों की मदद लेता है, जिससे योजना का विस्तृत स्वरूप बन सके।" स्पष्ट है कि विद्यालय में जो उपलब्ध साधन हों उन्हीं का अधिकतम उपयोग किया जाये। अतिरिक्त साधनों तथा सुविधाओं की कोई मांग न की जाये। कोठारी कमीशन के अनुसार "प्रत्येक शिक्षा संस्था अपने वर्तमान साधनों से ही, चाहे वे कितनी ही सीमित क्यों न हो, अच्छी से अच्छी योजना बनाकर और अधिक परिश्रम करके अपने शिक्षा स्तर को सुधारने की दिशा में कार्य करें।"

संस्थागत नियोजन का उद्देश्य--

(1) शिक्षण में सुधार लाना।

(2) शिक्षकों की कार्य शक्ति को प्रोत्साहन देना तथा उनकी सृजनात्मक शक्तियों से लाभ उठाना।

(3) स्थानीय समुदाय को विद्यालय सुधार में भाग लेने के लिये उत्साहित करना।

(4) भौतिक साधनों की अपेक्षा मानवीय साधनों पर अधिक बल देकर विद्यालय सुधार करना।

(5) विद्यालय, पुस्तकालय, वाचनालय तथा संग्रहालय आदि में सुधार करना।

संस्थागत नियोजन के विभिन्न कार्यक्रम--

(1) विद्यालय की अव्यवस्था और व्यर्थता को रोकना।

(2) शिक्षण प्रणालियों में सुधार।

(3) पाठ्यक्रम को यथासम्भव प्रभावशाली बनाना।

(4) पिछड़े और विकास रुद्ध छात्राओं को सहायता करना।

(5) प्रतिभावान छात्रों पर विशेष ध्यान देना।

(6) उपलब्ध साधनों के आधार पर विभिन्न पाठ्य सहगामी क्रियाओं का उचित तथा प्रभावशाली ढंग से आयोजन करना।

(7) उपलब्ध भौतिक साधनों के आधार पर विद्यालय को आकर्षक तथा सुविधा-जनक बनाना।

(8) विद्यालय को समुदाय केन्द्रित बनाने के लिये समाज सेवा, प्रौढ़ शिक्षा तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करना।

प्रश्न

1--संस्थागत नियोजन से आप क्या समझते हैं, विस्तार से लिखिये।

2--संस्थागत नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

पाठ--11

समय विभाग चक्र

बालकों का पर्याप्त समय विद्यालय में व्यतीत होता है जहां वे विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं। कक्षा में बैठकर पढ़ने के अतिरिक्त खेलकूद जैसे विभिन्न कार्यों में भाग लेते हैं। उनके समस्त कार्यों को व्यवस्थित एवं सुचारु रूप से चलाने के लिये समय सारिणी की आवश्यकता होती है।

समय विभाग चक्र की आवश्यकता, महत्व एवं लाभ—

1--समय विभाग चक्र के बिना विद्यालय के कार्य को व्यवस्थित रूप से चलाना कठिन है।

2--इसके अभाव में अध्यापकों तथा छात्रों को यह नहीं मालूम होता कि कौन-सा विषय किस घंटे में एवं किस दिन पढ़ाया जायगा जिससे पाठ की तैयारी भली-भांति की जा सके।

3--प्रधानाध्यापक को इसके द्वारा यह ज्ञात रहता है कि किस कक्षा में, किस घन्टे में, कौन अध्यापक, क्या विषय पढ़ा रहा है।

4--प्रधानाध्यापक को शिक्षकों की अनुपस्थिति में उनके विषय की पढ़ाई का प्रबन्ध करने में सरलता होती है।

5--समय विभाग चक्र द्वारा अध्यापकों तथा छात्रों की रुचि अपने कार्य में बनी रहती है। उन्हें पढ़ने पढ़ाने में बोझ नहीं मालूम पड़ता।

6--समय विभाग चक्र के अनुसार कार्य करने में सरलता होती है तथा कार्य में कुशलता की वृद्धि होती है एवं नियमित रूप से कार्य करने की आदत पड़ती है।

7--अध्यापक एवं छात्रों को समय के अन्दर कार्य को पूर्ण करने की आदत पड़ती है।

8--समय के सदुपयोग करने का ज्ञान उत्पन्न होता है।

9--समय विभाग चक्र द्वारा बालकों में अनुशासन की भावना लाने में सहायता मिलती है।

समय विभाग चक्र निर्माण के सामान्य सिद्धान्त—

समय विभाग चक्र की आवश्यकता एवं महत्व को ध्यान में रखकर इसके निर्माण के लिये कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है जिससे बालकों के समय का सदुपयोग हो सके, अध्ययन के प्रति रुचि हो, थकावट उत्पन्न न हो तथा शिक्षण प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हो।

1--रुचि का सिद्धान्त--समय तालिका में विषयों की विविधता हो जिससे बालक रुचि के अनुसार अपने विषय का चुनाव कर सके तथा अपनी इच्छानुसार पढ़ सके। अध्यापकों को कार्य का विभाजन करते समय उनकी रुचि के विषय दिये जायें।

2--घन्टों के क्रम का सिद्धान्त कुछ विषय सरल एवं कुछ कठिन होते हैं। ऐसे विषय जो शीघ्र थकान उत्पन्न करते हैं उन्हें दिन के अच्छे भाग में रखा जाये, अर्थात् प्रातःकाल का मध्य भाग सर्वोत्तम होता है, उसमें रखे जायें। कठिन विषय प्रथम तथा अन्तिम घन्टों में न रखे जायें।

3--क्षमताओं का ध्यान--बालकों की शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं को ध्यान में रखकर विविध कार्यक्रमों की व्यवस्था की जाये।

4--आयु का ध्यान--घन्टों का समय छात्रों की आयु को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाये। जैसे 4 से 9 वर्ष तक के बालकों के लिये 10, 15 मिनट के घन्टे, 10 से 14 वर्ष के लिये 20-25 मिनट के घन्टे, 14 वर्ष से ऊपर के बच्चों के लिये 30 से 45 मिनट तक के घन्टे रखे जाया करें।

5--घन्टों का क्रम--कठिन विषय एवं सरल विषयों को क्रम से अदल-बदल कर रखा जाये जिससे बालकों को थकान उत्पन्न न हो।

6--मध्यान्तर व्यवस्था--बालकों को लगातार काम करने से थकान उत्पन्न न हो, इसलिये मध्यान्तरों की व्यवस्था होनी चाहिए।

7--मौसम का ध्यान--समय विभाग चक्र के निर्माण में मौसम का ध्यान रखना आवश्यक है। मौसम का बालक की कार्य क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। अवधि का समय मौसम के अनुसार कम और ज्यादा होना चाहिए। ग्रीष्मकालीन समय विभाग चक्र में घन्टों का समय अपेक्षाकृत कम होना चाहिए।

8--शिक्षा विभागीय नियमों का ध्यान विभाग द्वारा प्रदत्त अवकाशों तथा नियमों को ध्यान में रखकर समय विभाग चक्र का निर्माण किया जाये।

समय विभाग चक्र के प्रकार--

1--विद्यालय की समस्त कक्षाओं के लिये कक्षागत सामान्य समय विभाग चक्र।

2--अध्यापक अनुसार समय-विभाग-चक्र।

3--प्रत्येक कक्षा का पृथक्-पृथक् समय विभाग चक्र।

4--गृह कार्य एवं अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं के लिये समय विभाग चक्र। समय विभाग चक्र बनाते समय उपरोक्त सभी बातों को ध्यान में रखना चाहिए। साथ ही इसके निर्माण से पूर्व कुछ आवश्यक सूचनायें एवं आंकड़ों का संग्रह कर लेना चाहिए।

समय विभाग चक्र बनाने के लिय आवश्यक तथ्यों की जानकारी--

1--अवधि--विद्यालय के लिये निर्धारित समय क्या है ?

2--कालांश--विद्यालय के सम्पूर्ण समय को कितने कालांशों में विभाजित किया जायेगा और प्रत्येक कालांश कितने मिनट का होगा ?

3--शिक्षकों की तालिका--विद्यालय में कार्यरत शिक्षक, शिक्षिकाओं की तालिका।

4--शिक्षकों की शैक्षिक योग्यता--प्रत्येक अध्यापक की विषय सहित शैक्षिक योग्यता की सूची एवं उनका विषय पढ़ाने का पूर्व अनुभव।

5--पाठ्यक्रम में कक्षानुसार विषयों की संख्या एवं प्रत्येक विषय के लिये निर्धारित घन्टों की संख्या।

प्राथमिक पाठशाला के लिये एक नमूने का समय विभाग चक्र प्रस्तुत है --

प्राथमिक विद्यालय का नमूने का समय विभाग चक्र

कक्षा	अवधि	प्रथम	द्वितीय		तृतीय	चतुर्थ		पंचम्	षष्ठम्		सप्तम्	अष्ठम्
1	प्रार्थना सभा तथा उपस्थिति	हिन्दी	गणित	स्वल्प मध्यान्तर--5 मिनट का	समान्य विज्ञान	कला	मध्यान्तर--30 मिनट का	सामाजिक विजय	हस्त-कला	स्वल्प मध्यान्तर--5 मिनट का	शारी० शिक्षा	नैतिक शिक्ष
2		,,	,,		,,	,,		,,	,,		,,	,,
3		,,	सामान्य विज्ञान		गणित	सामाजिक विषय		विज्ञान	अंग्रेजी		कला 3 दिन, हस्तकला 3 दिन	शारी० शिक्षा 3 दिन, नैतिक शिक्षा 3 दिन
4		,,	,,		,,	,,		,,	,,		,,	,,
5		,,	,,		,,	,,		,,	,,		,,	,,

प्रश्न

1--विद्यालय व्यवस्था में समय सारिणी का क्या सहत्व है ? समय तालिका निर्माण के प्रमुख सिद्धातों का उल्लेख कीजिये ।

पाठ--12

पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम क्या है ? पहले पाठ्यक्रम की संकल्पना केवल सैद्धान्तिक ज्ञान का समावेश किया जाता था और किसी प्रकार की सह पाठ्यगामी अन्य क्रियायें उसमें सम्मिलित नहीं की जाती थीं । कालान्तर में पाठ्यक्रम के विषय में विचार बदल गये और उसमें छात्रों के सर्वांगीण विकास के लिये विद्यालयों में आयोजित अन्य क्रियायें भी सम्मिलित कर दी गई । वर्तमान पाठ्यक्रम एक साधन समझा जाता है जिसके द्वारा विद्यालय अपने मूल सामाजिक उत्तरदायित्व को प्रभावपूर्ण रीति से निबाहना चाहता है ।

इस प्रकार पाठ्यक्रम उन समस्त अनुभवों को कह सकते हैं जो विद्यालय की देखरेख में छात्रों को होते हैं । मुदालियर आयोग की रिपोर्ट के अनुसार पाठ्यक्रम से आशय केवल परम्परागत शैक्षणिक विषयों से नहीं है जो स्कूल में पढ़ाये जाते हैं वरन् उनमें वे समस्त अनुभव भी निहित हैं जो छात्र उन अनेक क्रियाओं द्वारा प्राप्त करता है, जो स्कूल में, कक्षा के अन्दर में, पुस्तकालय में, कर्मशाला में, खेल के मैदान में तथा छात्र और अध्यापक के पारस्परिक सम्बन्धों में प्राप्त होते हैं । इस प्रकार विद्यालय का समस्त जीवन ही पाठ्यक्रम है जो छात्र के संतुलित व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक होता है ।

पाठ्यक्रम की उपयोगिता--पाठ्यक्रम विद्यालय के सम्मुख एक निर्धारित लक्ष्य प्रस्तुत करता है । निश्चित पाठ्यक्रम होने से शिक्षक के सम्मुख एक स्पष्ट रूपरेखा रहती है कि उसे क्या पढ़ाना है, कितना पढ़ाना है और कितने समय में पढ़ाना है । समय सारिणी के अनुसार शिक्षक अपने पाठों का विभाजन कर सकता है । पाठ्यक्रम द्वारा छात्रों को यह अवगत कराने में सुविधा रहती है कि उन्हें कितना पढ़ना है । त्रैमासिक, छमाही व वार्षिक परीक्षा के दृष्टिकोण से अध्ययन में सुविधा रहती है ।

पाठ्यक्रम की नवीन संकल्पना के परिपेक्ष्य में पाठ्यक्रम निर्धारण के समय मूलभूत सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिये, जैसे जीवन की तैयारी, सृजनात्मकता अवकाश का उपयोग, क्रियात्मकता का सिद्धान्त, विषयों का सह-सम्बन्ध आदि ।

वर्तमान प्रारम्भिक स्कूलों के पाठ्यक्रम का विस्तृत ज्ञान--क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक उत्तर प्रदेश में विभिन्न स्तरों पर वर्तमान पाठ्यक्रम इस प्रकार है :

प्रारम्भिक कक्षायें

(कक्षा 1 से 5 तक वय वर्ग 6 से 11 वर्ष)

क्रियात्मक--

1--प्रारम्भिक कृषि तथा बागवानी और सम्बन्धित कला ।

2--कताई और हस्त कौशल ।

ज्ञानात्मक--

1--भाषा ।

2--गणित ।

3--सामाजिक विषय (भूगोल, इतिहास, सामाजिक जीवन की शिक्षा)

4--ज्ञानात्मक कृषि और सामान्य विज्ञान ।

5--शारीरिक सुधार ।

पूर्व माध्यमिक कक्षायें

(कक्षा 6, 7, 8 वय वर्ग 11 से 14 वर्ष)

(अ) प्रयोगात्मक विषय--

1--बेसिक क्राफ्ट तथा सम्बन्धित कला ।

(प्रति सप्ताह 40 मिनट के 10 घन्टे)

निम्नलिखित विषयों में से एक तथा स्थानीय क्राफ्ट--

1--कृषि तथा सम्बन्धित कला ।

2--कताई-बुनाई तथा सम्बन्धित कला ।

3--पुस्तक कला तथा सम्बन्धित कला ।

4--धातु कला तथा सम्बन्धित कला ।

5--चर्म कला तथा सम्बन्धित कला ।

6--काष्ठ कला तथा सम्बन्धित कला ।

7--सिलाई तथा सम्बन्धित कला ।

8--गृह लिल्प तथा सम्बन्धित कला ।

(ब) शास्त्रीय विषय--

2--हिन्दी अनिवार्य संस्कृत सहित ।

प्रति सप्ताह 40 मिनट के 8 घंटे ।

3--गणित (अंकगणित, बीज गणित तथा रेखा गणित) ।

प्रति सप्ताह 40 मिनट के 6 घंटे ।

4--सामाजिक विषय: (इतिहास, भूगोल तथा नागरिकशास्त्र)।

प्रति सप्ताह 40 मिनट के 4 घन्टे ।

5--सामान्य विज्ञान--प्रति सप्ताह 40 मिनट के 4 घन्टे अथवा स्थानीय कला ।

6--शारीरिक विकास--प्रति सप्ताह 40 मिनट के 4 घंटे ।

7--निम्नलिखित वैकल्पिक विषयों में से कोई दो प्रति सप्ताह 40 मिन
4 घंटे ।

अ--अंग्रेजी ।

ब--भारतीय संविधान की आठवीं सूची के अनुसार एक आधुनिक भारतीय भाषा (उर्दू अतिरिक्त) इन भाषाओं का पाठ्यक्रम वही होगा जो हिन्दी भाषा का है । अ
प्रत्येक भाषा का अलग होगा ।

स--प्राचीन भाषायें (संस्कृत, अरबी, फारसी) ।

द--संगीत ।

य--वाणिज्य ।

र--कला ।

प्रश्न

1--पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ? पाठ्यक्रम निर्माण के प्रमुख सिद्धा
विवेचना कीजिये ।

पाठ--13

पाठ्य-पुस्तकें

ाठ्य पुस्तकें क्यों आवश्यक हैं--

1--पाठ्य पुस्तकें पाठ योजना बनाने में सहायता प्रदान करती हैं।

2--बालकों को कक्षा में पढ़े हुये पाठ को दोहराने के लिये आवश्यक हैं।

3--बालक पाठ्य पुस्तकों की सहायता से अपना गृह कार्य सरलता से कर सकते हैं।

4--पाठ्य पुस्तकों द्वारा छात्रों को अनेक महत्वपूर्ण सूचनायें एक ही साथ मिल जाती हैं।

पाठ्य पुस्तकों में क्या विशेषतायें होनी चाहियें--

1--पाठ्य पुस्तकों की भाषा सरल हो और वह छात्रों की समझ में आने वाली हो।

2--विषय का वर्णन रोचक ढंग से किया गया हो विशेष कर कठिन प्रसंगों को ऐसे प्रस्तुत किया गया हो कि बालक उनका और अपना अवधान केन्द्रित कर सके।

3--पाठ्य पुस्तक में शिक्षण पद्धति की ओर संकेत किया गया हो।

4--छोटी कक्षाओं के लिए सचित्र पुस्तकें हों।

5--अभ्यास कार्य, गृह कार्य तथा परीक्षा के लिये सुझाव हों।

पाठ्य पुस्तकों का उपयोग--

(1) शिक्षक को पाठ पढ़ाने के उपरान्त बालकों को बता देना चाहिये कि किन पृष्ठों को पढ़ने से उन्हें पाठ के सम्बन्ध में ज्ञान मिल सकता है।

(2) भाषा शिक्षण में पाठ्य पुस्तकों का उपयोग पाठ्य के आदर्श वाचन, सस्वर वाचन मौन पाठ बोध प्रश्न व्याख्या इत्यादि में होना चाहिये।

(3) गणित की पाठ्य-पुस्तक का प्रयोग अभ्यास प्रश्न को हल करने में होना चाहिए।

(4) पाठ्य-पुस्तकों का उचित उपयोग उसी समय हो सकता है जब शिक्षक योग्य हो शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों को ही अपने शिक्षण का अन्त समझ लेता है जबकि वह शिक्षण का साधन मात्रा है।

प्रश्न

1--पाठ्य पुस्तकों का क्या महत्व है? पाठ्क पुस्तकों के चयन व रचना में आप किन-किन बातों का ध्यान रखेंगे?

पाठ--14

बुक-बैंक

शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त कराने के लिए निर्धन बालकों के लिए निःशुल्क पाठ्य-पुस्तकों की व्यवस्था करना परम आवश्यक है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही 1975 में बुक-बैंक की स्कूलों में व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था में बुक-बैंक द्वारा छात्रों को वर्ष भर के लिए पुस्तकें उधार दी जाती हैं।

बुक-बैंक का महत्व--

1--निर्धन छात्रों को आवश्यकतानुसार पुस्तकें प्राप्त हो जाती हैं।

2--अधिक मूल्य की पुस्तकें भी छात्र सरलता से प्राप्त कर लेता है।

3--विद्यालय के प्रति छात्रों में प्रेम भावना उत्पन्न होती है।

4--पुरानी पुस्तकों का प्रयोग सरलता से हो जाता है।

5--कागज की कमी को दूर करने में सहायता मिलती है।

6--बाजार में पुस्तकों का अभाव होता है तो शिक्षण कार्य में बाधा नहीं होती।

बुक-बैंक का संगठन व व्यवस्था--

1--विद्यालय में बुक-बैंक की स्थापना में समुदाय से भी सहयोग लिया जाय। बालकों को प्रेरित किया जाय कि वे वार्षिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् अपनी पढ़ी हुई पाठ्य-पुस्तकें बुक-बैंक को दान कर दें।

2--धनवान अभिभावकों को भी नवीन पुस्तकें दान करने के लिए प्रेरित किया जाय।

3--बैंक का समुचित ढंग से संचालन करने के लिए विद्यालय के वरिष्ठ अध्यापक को ही संचालक बनाया जा सकता है।

4--बुक-बैंक के लिए एक अलग कक्ष हो।

5--बुक-बैंक के लिए निम्न आवश्यक पंजिकायें रखी जाये जिससे रख-रखाव उचित ढंग से हो।

(1) पुस्तक वितरण पंजिका, (2) पुस्तक लेखा, (3) कार्यवाही पंजिका (4) दान पंजिका।

6--बुक-बैंक से पुस्तकें निर्धन और अभावग्रस्त बालकों को दी जावें।

7--यदि पुस्तक किसी बालक से खो जाय तो उससे पुस्तक का दाम न लेकर वह पुस्तक लाने को कहा जाय।

8--छात्रों से पुरानी पुस्तकों पर ही जिल्द का कार्य करवाया जाए।

प्रश्न

1--बुक-बैंक से आप क्या समझते हैं ? संक्षेप में लिखिये

2--बुक-बैंक पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये।

पाठ 15

विद्यालय अभिलेख एवं पंजिकाय

विद्यालय के समस्त काम के संचालन एवं व्यवस्था के लिए विद्यालय में कुछ पंजिकाओं एवं अभिलेखों के रखने की आवश्यकता होती है। विद्यालय के सभी कार्यों का ब्यौरा लिखित रूप में रखने का उत्तरदायित्व प्रधानाचार्य पर होता है। इन रजिस्टरों को रखने की प्रणाली निश्चित होती है। प्रत्येक विद्यालय में कुछ रजिस्टरों का रखना आवश्यक होता है।

सुविधा की दृष्टि से इन पंजिकाओं को निम्नलिखित रूप से विभाजित कर सकते हैं :

(1) सामान्य,

(2) शैक्षिक,

(3) वित्तीय अथवा अर्थ सम्बन्धी,

(4) साज-सज्जा सम्बन्धी,

(5) पत्र व्यवहार प्रणाली।

1—सामान्य पंजिकायें—

(1) लाग बुक (2) दर्शक विवरण पुस्तिका (3) विद्यालय कलेन्डर (4) अवकाश रजिस्टर (5) सर्विस बुक (6) भवन सम्बंधी (7) पाठ्य-क्रम सहगामी क्रियाओं का रजिस्टर।

2—शैक्षिक—

(1) छात्रों की उपस्थिति रजिस्टर (2) अध्यापक उपस्थित रजिस्टर (3) छात्रों की प्रगति सम्बन्धी रजिस्टर (4) समय तालिका सम्बन्धी फाइल (5) प्रवेश रजिस्टर (6) प्रधानाचार्य के निरीक्षण का रजिस्टर (7) दंड सम्बन्धी रजिस्टर (8) प्रवेश रजिस्टर (9) स्थानान्तरण सर्टीफिकेट (10) अंक रजिस्टर (11) लेक्चर रजिस्टर (12) अध्यापक उपस्थित रजिस्टर।

3—वित्तीय या अर्थ सम्बन्धी—

(1) शुल्क रजिस्टर (2) बिल रजिस्टर (3) आर्डर बुक (4) कन्टिजेंसी रजिस्टर (5) कैश बुक रजिस्टर (6) छात्रवृत्ति (7) दान रजिस्टर (8) प्राविडेन्ट फंड रजिस्टर (9) वेतन पंजिका (10) जनरल लेजर।

4—साज-सज्जा—

(1) विद्यालय सम्पत्ति रजिस्टर (2) छात्रावास सम्पत्ति रजिस्टर (3) खेलकूद सम्बन्धित रजिस्टर (4) स्टेशनरी लेखा रजिस्टर (5) पुस्तकालय सम्बन्धी रजिस्टर (6) विभिन्न विभागों का सम्पत्ति रजिस्टर।

5—पत्र-व्यवहार सम्बन्धी—

(1) पत्र प्राप्ति एवं भेजने का रजिस्टर, (2) चपरासी पुस्तिका, (3) अभिभावक सम्बन्धी-पत्र व्यवहार फाइल, (4) शिक्षा विभाग तथा अन्य विभागों से सम्बन्धित फाइल ।

विद्यालय अभिलेखों तथा रजिस्टरों के निर्माण तथा सुरक्षित रखने का ढंग—

1—विद्यालय के सभी रजिस्टरों को मोटी जिल्द से बनवाया जाय ।

2—विद्यालय के सभी रजिस्टरों एवं अभिलेखों की सूची तैयार करवा ली जाय तथा सुरक्षित स्थान पर रखा जाय ।

3—रजिस्टरों को लोहे की आलमारी में रक्खा जाय ।

4—रजिस्टर निर्माण में सावधानी रखी जाय तथा शुद्ध लिखा जाय ।

5—फाइलों पर नामांकित चिटें लगाई जायं ।

6—प्रधानाचार्य इन रजिस्टरों का समयानुसार निरीक्षण करता रहे ।

प्रश्न

1—विद्यालयी अभिलेख से आप क्या समझते हैं ? संक्षेप में लिखिये ।

2—प्रमुख विद्यालयी पंजिकाओं का उल्लेख करिये ।

3—'विद्यालयी अभिलेख' एवं 'पत्रिकायें' पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये।

पाठ 16

अध्यापक दैनन्दिनी--

उद्देश्य—छात्राध्यापक एवं छात्राध्यापिकाओं को व्यवस्थित रूप से नया तथा कुशलता के साथ कार्य करने का ज्ञान देना ।

अध्यापक दैनन्दिनी की आवश्यकता एवं उपयोगिता--

शिक्षण कार्य को व्यवस्थित तथा नियोजित ढंग से चलाने के लिये अध्यापक दैनन्दिनी का प्रयोग किया जाता है । दैनन्दिनी में अध्यापक शिक्षण विधियां, पाठ्यक्रम तथा सप्ताह मास तथा वर्ष भर में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य सामग्री का विभाजन करता है तथा साप्ताहिक, मासिक परीक्षा में प्राप्त छात्रों के अंकों का विवरण रखता है जिसके द्वारा छात्रों की प्रगति का तुलनात्मक ज्ञान करता है । इसके अतिरिक्त इसकी निम्नलिखित उपयोगिता है :

(1) इससे अध्यापक का कार्य सरल हो जाता है वह सप्ताह में कितना पढ़ाना चाहता है तथा उस उद्देश्य की पूर्ति हुई या नहीं जानता है ।

(2) प्रधानाध्यापक अध्यापक के कार्य का मूल्यांकन सरलता से कर सकता है ।

(3) प्रधानाध्यापक को यह ज्ञात होता है कि अध्यापक ने कितना पाठ्यक्रम पूर्ण कर लिया है ।

(4) छात्र के उपलब्धि का ज्ञान अध्यापक सरलता से उसके प्राप्तकों के आधार पर कर सकता है ।

दैनन्दिनी का रूप एवं उसके भरने की विधि--

दैनन्दिनी में निम्न बातों के लिये पृष्ठ विभाजन रहता है :

1—वर्ष भर के पाठों का विभाजन ।

2—साप्ताहिक कार्य का विवरण ।

मासिक परीक्षाओं के अंक, माह के अन्तर्गत पढ़ाये गये पाठ का मूल्यांकन करके छात्र छात्राओं के प्राप्तांक लिखे जायेंगे ।

वर्ष भर के पाठ्यक्रम का विवरण—

शिक्षक अपने विषय के पाठ्य को लिख लेता है तथा विद्यालय के सत्रों के अनुसार विषय का विभाजन कर लेते हैं । विभाजन के समय दो बातों का ध्यान रक्खा जाय ।

(1) विद्यालय कैलेन्डर के अनुसार जिस सत्र में अधिक अवकाश हो समय कम हो, पाठ्यक्रम का कम अंश लिया जाय ।

(2) कठिन पाठों के लिये समय अधिक दिया जाय ।

पाठ्यक्रम को तीन सत्रों के लिये विभाजित करने के पश्चात पाठों का ब्योरा एवं शिक्षण के लिये विधियों का प्रयोग लिखा जाय । शिक्षक इसके अतिरिक्त अन्य क्रिया-कलाप जो भी करवाता है उसका उल्लेख करें ।

साप्ताहिक कार्य का विवरण

सप्ताह म जितने अश का शिक्षण करने का उद्देश्य रखता ह लिख लेता ह ।

सप्ताह में अन्तिम दिन की तिथि	विषय/ कक्षा	कालांश	विषय का निर्धारित अंश	अध्यापक कृत कार्य	विवरण	प्रधानाध्यापक
1	2	3	4	5	6	7

अध्यापक द्वारा विवरण के अन्तर्गत यदि किसी कारण कोई अंश छूट जाय अथवा पढ़ाया जाय तो अगले सप्ताह में लिया जायगा कारण सहित टिप्पणी दें ।

प्रश्न

1—अध्यापक दैनन्दिनी की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर प्रकाश डालिये ।

2—'अध्यापक दैनन्दिनी' पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिये ।

पाठ 17

संचयी अभिलेख एवं प्रगति प्रपत्र का अनुरक्षण--

संचयी अभिलेख में छात्र के सम्बन्ध में समय-समय पर हो रही परीक्षाओं के परिणाम का ब्यौरा रखा जाता है। इसमें छात्र जीवन के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध म इस प्रकार की बातें होती हैं--शारीरिक, बौद्धिक, सामाजिक, शिल्प कार्य स्थिति, परिवार सम्बन्धी तथा मनोविज्ञान सम्बन्धी तथ्य। यह अभिलेख छात्रों को बहुमुखी विकास में सहयोग देते हैं। संचयी अभिलेख में छात्र सम्बन्धी किस प्रकार की सूचनायें रहती हैं :

(1) सामान्य आधार सम्बन्धी सूचनायें--

(क) छात्र का नाम।

(ख) जन्म दिनांक।

(ग) जन्म स्थान।

(घ) बालक की जाति।

(ङ) माता या अभिभावक का नाम।

(च) पिता का व्यवसाय।

(छ) घर का पता।

(2) पारिवारिक पृष्ठभूमि--इसमें बालक के पिता या अभिभावक की आर्थिक, सामाजिक स्थिति तथा परिवार के सदस्यों की संख्या व बालक की पारिवारिक स्थिति होना चाहिए।

(3) शैक्षिक योग्यता

(4) विद्यालय का इतिहास

(5) स्वास्थ्य रिपोर्ट

(6) बौद्धिक तत्व--बुद्धिमापक परीक्षणों द्वारा प्राप्तांक

(7) स्कूल में उपस्थिति

(8) पाठ्य सहगामी क्रियायें

(9) खेलों में उपलब्धियां

(10) व्यक्तित्व के गुण

(11) व्यावसायिक रुचियां--इसके अन्तर्गत बालक की व्यावसायिक रुचियों का अंकन किया जाये।

(12) कार्य अनुभव

(13) विशिष्ट रुचियां

(14) बाह्य क्रियाओं का आलेखन

संचित अभिलेख व उद्देश्य या प्रयोजन--

छात्राध्यापक को भली-भांति यह समझना है कि छात्र के विभिन्न पहलुओं की जानकारी किये बिना उसका बहुमुखी विकास सम्भव नहीं है। संचित अभिलेख इसी दृष्टि में उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

(1) छात्राओं के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का चित्र प्रस्तुत करते हैं।

(2) वर्ष के प्रारम्भ में ही छात्रों का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत करता है ।

(3) छात्रों की वार्षिक प्रगति का निर्धारण करना ।

(4) छात्रों की अनुपस्थिति की जानकारी रखना ।

(5) छात्रों के विभिन्न क्षेत्र के कार्य-कलापों की जानकारी रखना ।

(6) शैक्षिक और व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के चुनाव करने में छात्रों को परामर्श देना ।

(7) साहित्य, संगीत, कला में रुचि लेने वाले छात्रों का पता लगाना ।

(8) विशिष्ट योग्यता तथा प्रतिभावान छात्रों की शिक्षा व्यवस्था पृथक से करना ।

(9) मन्दबुद्धि बालक की प्रगति का सुझाव देना ।

(10) छात्रों की विभिन्न आवश्यकताओं को समझना ।

संचित अभिलेखों का अंकन--

छात्रों के प्रगति प्रपत्रों पर संचित आलेख की विशेषता बताते हुये यह स्पष्ट करना है कि जिस दिन से बालक विद्यालय में आता है और जब तक विद्यालय में रहता है उसके प्रत्येक कार्य-कलापों का लेखा जोखा संचित किया जाता है । जो उसके वर्तमान व भावी जीवन के निर्धारण में सहयोगी होता है । इस कार्य की सतर्कता आवश्यक है ।

(1) पूर्ण सूचनायें हों--छात्र के विकास से सम्बन्धित पूर्ण तथ्य आलेख में लिखे जायें ।

(2) सरलता से प्राप्ति--आवश्यकता पड़ने पर संचित अभिलेख सरलता से प्राप्त हो सके इसके लिये यह निश्चित स्थान पर ही रखे जायें ।

(3) स्पष्टता--अभिलेख में जो तथ्य लिखे जायें वे इस ढंग से लिखे जायें कि उनकी व्यवस्था सरलता से की जा सके ।

(4) सत्य सूचनायें--इसमें सूचनायें सत्य ही लिखी जायें । किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त सूचनायें नहीं लिखी जायें ।

(5) वस्तु-निष्ठता--यथा सम्भव वैषयिकता का पालन किया जाये । व्यक्तिगत रूप को कम से कम स्थान दिया जायें ।

(6) स्वतंत्र लेखन--आलेख पत्र में लिखी जाने वाली सूचनायें पूर्व लिखित से प्रभावित न हो ।

(7) संक्षिप्त व व्यवस्थित सूचनायें--

(8) सूचनाओं म परिवर्तन--नवीन सूचनाओं के प्राप्त होने पर समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन करना भी उचित है ।

(9) निरन्तरता--सूचनायें बराबर भरना चाहिये । जिस दिन से छात्र विद्यालय में आये । उससे सम्बन्धित समस्त आवश्यक सूचनायें भरी जायें और जब तक वह विद्यालय में रहे हमेशा उस पर अंकन की जायें । उसके बाद भी सम्बन्धित अभिलेख सुरक्षित रखे जायें ।

संचित अभिलेखों का महत्व व लाभ--

संचित अभिलेख छात्र के अध्ययन म अध्यापक की सहायता करते हैं। बालक के शैक्षिक व व्यावसायिक निर्देशन देने में पर्याप्त सहायता देते हैं। छात्र कल्याण में लगी संस्थाओं से छात्र की स्थिति देखकर उसे सहायता भी दिलवाई जा सकती है। अध्यापक को छात्र की शिक्षण गति का भी पता चलता है। छात्रों की विशेष रुचि व प्रतिभा को बताने म सहायक होते हैं। प्रगति पत्रों से अभिभावक भी अपने बालक की गतिविधियों से परिचित होते रहते हैं। उनका सहयोग छात्र प्रगति में विद्यालय को प्राप्त होता रहता है। छात्र, अध्यापक, अभिभावक का सम्बन्ध बनाये रखता है। अध्यापक को भी अपनी शिक्षण दोषों का ज्ञान होता है। छात्र को भविष्य में नवीन व्यवसाय चुनाव करने में सहायता करता है। संचित अभिलेखों से प्रधानाध्यापक को छात्रों के प्रमाण-पत्र लिखने में सहायता मिलती है। छात्र को भी अपनी दुर्बलताओं और कमियों का पता चलता रहता है। छात्रों के वर्गीकरण में सहायता मिलती है। बाल अपराधियों के विषय में भी इन्हीं संचित अभिलेखों से न्यायालय अधिकारी को भी बाल इतिहास समझने में सहायता मिलती है।

प्रश्न

1--संचयी अभिलेख का क्या उद्देश्य है? संक्षेप में लिखिये।

2--संचित अभिलेखों के महत्व पर प्रकाश डालते हुये लाभों का भी वर्णन कीजिय।

3--संचित अभिलेख पर टिप्पणी लिखिये।

पाठ----18

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण का अर्थ—साधारणतया निरीक्षण का अर्थ देखना समझा जाता है, परन्तु इस शब्द द्वारा अभिप्रेत "देखना" ऐसा देखना होता है जो किसी ऊंचे स्थान पर स्थित होकर किया जाये जहां से नीचे का सम्पूर्ण क्रिया कलाप इतनी अच्छी तरह दिखलाई पड़े कि उसमें भाग लेने वाले प्रत्येक व्यक्ति की कमियां, कमजोरियां तथा उनका सम्पूर्ण क्रिया-कलाप पर पड़ने वाला प्रभाव स्पष्ट तथा दृष्टिगोचर होता रहे। निरीक्षण प्रबन्धक या शिक्षा विभाग के अधिकारी करते हैं और पर्यवेक्षण प्रधानाध्यापक का उत्तरदायित्व होता है जिससे विद्यालय का सुसंचालन हो सके।

पर्यवेक्षण कार्य के सुसंचालन को ध्यान में रखकर किया जाता है परन्तु निरीक्षण में परीक्षा एवं मूल्यांकन की भावना की प्रधानता रहती है। निरीक्षण का अर्थ दोष दर्शन मात्र न होकर रचनात्मक एवं समीक्षात्मक होना चाहिए। जब कभी अवसर आये तो प्रधानाध्यापक को विधिवत् निरीक्षण करा लेना चाहिए। यदि उसका पर्यवेक्षण ठीक-ठीक चलता रहा है तो निरीक्षण किसी भी प्रकार भयजनक नहीं सिद्ध होगा। उलटे उससे उसको प्रशंसा ही मिलेगी। पर्यवेक्षण में असावधान प्रधानाध्यापक निरीक्षण से घबड़ाते हैं और पर्याप्त तैयारी के पश्चात् भी वे लज्जाजनक स्थिति ही प्राप्त कर पाते हैं। अच्छे प्रधानाध्यापक को निरीक्षण की तैयारी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

बहुत से लोग पर्यवेक्षण का मुख्य अभिप्राय छिद्रान्वेषण मात्र समझ बैठते हैं। वस्तुतः इसका उद्देश्य विद्यालय की समस्त क्रियाओं का निरीक्षण करके उनसे प्राप्त होने वाले परिणामों का मूल्यांकन करना और यह निश्चय करना होता है कि विद्यालय अपने उद्देश्यों में कहां तक सफल रहा है और यदि नहीं हो रहा है तो किन कारणों से, त्रुटियों और अभावों से उसे असफलता मिल रही है और उन्हें किस प्रकर दूर किया जा सकता है। उन त्रुटियों को दूर करते हुये कार्यकर्ताओं का पथप्रदर्शन तथा सुझाव आदि द्वारा प्रोत्साहित करना भी होता है।

निरीक्षण एवं पर्यवेक्षण की आवश्यकता एवं उपयोगिता—

विद्यालय एक सप्रयोजन संगठन है और इसके सभी अंगों, अध्यापकों, छात्रों तथा कर्मचारियों में अनुशासन, परस्पर प्रेम और सद्भावना बनी रहे इसके लिये विशेष समीक्षात्मक बुद्धि और ज्ञान की आवश्यकता होती है। छिद्रान्वेषण एवं विध्वंसात्मक समीक्षा से कोई लाभ नहीं होता। पर्यवेक्षण का उद्देश्य रचनात्मक है विध्वंसात्मक नहीं। किसी कार्य की समीक्षा करते हुये उसके सुधार एवं संशोधन के लिये ठोस परामर्श एवं सुझाव देना पर्यवेक्षण का अंग है। इस प्रकार के कार्य के लिये विशेष योग्यता और उन सिद्धान्तों की जानकारी अपेक्षित है जिनके आधार पर पर्यवेक्षण उपयोगी और सार्थक हो सकता है। पर्यवेक्षक की स्वयं पर्यवेक्षीय विषयों की पूरी जानकारी होनी चाहिए जिससे कार्य की पूर्ण एवं व्यापक समीक्षा हो सके। पर्यवेक्षण नियमित निष्पक्ष एवं न्याय संगत होना चाहिए और पर्यवेक्षक को अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। उसे पाठ्यक्रम सम्बन्धी तथा पाठ्य सहगामी क्रियाएं दोनों का ही नियमित रूप से अध्यापकों के सहयोग से सद्भावनापूर्ण पर्यवेक्षण करना चाहिए। पर्यवेक्षण में शिक्षण कार्य पर विशेष ध्यान अपेक्षित है। पाठ्य-वस्तु की उपयुक्तता शिक्षण प्रणाली, छात्र अध्यापक सम्बन्ध, गृह कार्य, कक्षा व्यवस्था, बैठने की व्यवस्था, उठने बैठने का ढंग, प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने का ढंग, कक्षा अनुशासन, श्यामपट कार्य, वेषभूषा, समय की पाबन्दी, पारस्परिक व्यवहार आदि भी निरीक्षण के विषय होने चाहिए। पर्यवेक्षक एवं निरीक्षक को अपनी पैनी दृष्टि से विभिन्न परिस्थितियों को ठीक ठीक समझकर यथोचित व्यवहार करना चाहिए। समस्त सम-विषम परिस्थितियों के

य पूरी–पूरा जानकारी दे सकना तथा व्यवहार सिद्धान्त बता सकना तो एकान्तत म्भव कार्य है । यदि लक्ष्य पर दृष्टि बनी रहे और बुद्धिमानी से पर्यवेक्षक्षण एवं निरीक्षण रिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाये तो सभी समस्याओं के उचयुक्त हल स्वत मने आ जाते हैं और संस्था सफलता के चरमोत्कर्ष पर पहुंच जाती है ।

शिक्षा की नवीन परिकल्पनाओं के आधार पर शिक्षा की प्रकृति, उद्देश्य, पाठ्यक्रम क्षण विधि में भी इसी के अनुरूप परिवर्तन हुये हैं । इसी अवधारणा के अनुसार निरीक्षण स्थान में परिवीक्षण शब्द का प्रादुर्भाव हुआ जो उद्देश्य, क्षेत्र विधि एवं दृष्टिकोण में रीक्षण से भिन्न है । अतः परिवीक्षण में छात्र एवं शिक्षक के विकास के साथ ही स्वयं ने अभिभावकों तथा समाज के अन्य लोगों के विकास पर भी बल देता है ।

धियां––

निरीक्षण एवं परिवीक्षण की कार्य विधि तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जाती है । सामान्य ासन, शिक्षक, शिक्षार्थी व अन्य कर्मचारियों की मनोभावना, पारस्परिक व्यवहार व म्बन्धों पर ही विद्यालय का वातावरण निर्भर करता है । ऐसे वातावरण का निर्माण ानाध्यापक के उत्तम चरित्र पर ही निर्भर है । निरीक्षक वर्ग भी अपने परिवेक्षण में इस र सहायक हो सकते हैं । शैक्षिक कार्य की उन्नति के लिये निरीक्षक वर्ग सेमिनार का योजन करनें, प्रयोगशाला व सहायक सामग्री की कमी दूर करवाने व अध्यापकों को पढ़ान नवीन विधियों की जानकारी देने का कार्य कर सकते हैं । सेवाकालीन प्रशिक्षण की वस्था करना, विचार गोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन कर शैक्षिक उन्नयन करवाया ता है । बालकों की पढ़ाई में अरुचि व उदासीनता को दूर करनें के लिये ुसंधान व पर्यवेक्षण कार्य किया जाता है । इसके लिये शैक्षिक समस्याओं का ानिक रूप में अध्ययन करके शैक्षिक विचारधाराओं को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया ता है ।

प्रश्न

1––वर्तमान निरीक्षक प्रणाली के प्रमुख दोषों पर प्रकाश डालिये ।

2––निरीक्षण व परनिरीक्षण (प्रवेक्षण) में क्या अन्तर है ?

3––विद्यालय निरीक्षक अपने क्षेत्र के विद्यालयों में शिक्षा के गुणात्मक उन्नयन हेतु कौन–कौन से व्यावारिक उपाय कर सकते हैं ? कारण सहित स्पष्ट कीजिये ।

पाठ १९

अध्यापक का मूल्यांकन अधिकारियों द्वारा एवं स्वमूल्यांकन

अध्यापक का मूल्यांकन

प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य का मूल्यांकन चाहता है, परिश्रम पूर्वक किये गये का पश्चात् प्रशंसा का एक वाक्य शिक्षक में पुलक भर देता है और भविष्य में अधि उत्साहपूर्वक कार्य करने के लिये प्रेरित करता है ।

शिक्षक का कार्य जीवित प्राणियों के मध्य सम्पन्न होता है अतः उसका श्रम प्रतिक्ष मूल्यांकित होता रहता है । अपने विद्यार्थियों द्वारा कक्षा शिक्षण करते हुये बालकों क चमकती आंखें एकाग्रचित्त मुद्रा, प्रसन्नता से आलोकित मुख ही शिक्षक का वास्तवि मूल्यांकन है ।

शिक्षक प्रतिदिन ही एक मूल्यांकन कर सकता है ।

1--मैंने पाठ की तैयारी कैसे की ।

2--सहायक सामग्री का चयन और प्रदर्शन किया ।

3--पाठ का उद्देश्य प्राप्त किया या नहीं ।

4--बालक मेरे पाठ से सन्तुष्ट हुये या नहीं ।

5--कक्षा में अनुशासन की समस्या ।

6--कक्षा के समस्त छात्रों पर ध्यान दिया गया या नहीं ।

7--बालकों द्वारा लिखित कार्य को जांच समय पर करना ।

8--निश्चित समय पर कक्षा में जाता हूं या नहीं ।

9--केवल तीव्र बुद्धि के बालकों से ही प्रश्न पूछ कर संतुष्ट नहीं होना चाहिये ।

10--छात्रों के शारीरिक दोष, असमर्थता एवं व्यक्तिगत समस्याओं के प्रति माननी दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास करना ।

शिक्षक को कक्षा में जाने से पूर्व देश, काल, परिस्थिति से पूर्णतया परिचित हो चाहिये । उसे एक पुलिस इन्सपेक्टर की मुद्रा में कक्षा में प्रवेश नहीं करना चाहि अपितु शिक्षण एक आनन्दपूर्ण अनुभूति है, इस दृष्टिकोण के साथ कक्षा में प्रवे करना चाहिये ।

वर्ष भर में परिश्रम पूर्वक अध्यापन कार्य के पश्चात् शतप्रतिशत परीक्षाफल शिक्ष का स्वमूल्यांकन है ।

शिक्षक को केवल कक्षा के अन्दर ही कार्य सम्पन्न करके सन्तुष्ट नहीं होना चाहि अपितु खेल के मैदान रंगशाला (Stage) और अन्य पाठ सहगामी क्रियाओं के संचालन कुशल होना चाहिये । साथ ही वर्तमान युग में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और सामान्य ज्ञान उत्त होना चाहिये । साथ ही छात्रों के अभिभावकों के दृष्टिकोण को समझने का प्रया करना चाहिये लोकतांत्रिक दृष्टिकोण अपनाकर सभी जाति एवं धर्मों के प्रति समन्वयात्म दृष्टिकोण अपनाना चाहिये ।

शिक्षक अपने वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है अतः उसी वेशभूषा, रहन–सहन, आचार व्यवहार छात्रों के लिये अनुकरणीय होना चाहिये ।

वाचन स्पष्ट, लेखन सुन्दर होना चाहिये ।

समय का पाबन्द होना चाहिये ।

विद्यालय रूपी परिवार में प्रधानाध्यापक वरिष्ठ सदस्य की भांति है । शिक्षक को विद्यालय कार्य में सुचारुरूप से संचालन हेतु प्रधानाध्यापक को वही सम्मान व आदर शिक्षक को देना चाहिये । प्रधानाध्यापक व्यक्तिगत गुणों और रुचि तथा उत्तरदायित्व निर्वाह की क्षमता के अनुसार ही शिक्षकों को कार्य सौंपते हैं अतः अवसर मिलने पर शिक्षक को जो भी कार्य सौंपा जाय उसे मेहनत और ईमानदारी से करने चाहिये । प्रत्येक विद्यालय में कुछ शिक्षक ऐसे होते हैं जिनकी कार्य क्षमता के सहारे ही प्रधानाध्यापक बड़े–बड़े प्रोजेक्ट हाथ में लेता है । शिक्षक यह देखें कि वर्ष भर में कौन–कौन से उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य उसे सौंपे गये ।

2––लिखित कार्य––प्रधानाचार्य छात्र छात्राओं की कक्षानुसार या शिक्षक के कार्यानुसार लिखित कार्य की समय सारिणी बनावें और नियमित जांच करें ।

3––जिन शिक्षकों पर प्रधानाचार्य तथा बालक दोनों का विश्वास होता है वे विद्यालय के स्तम्भ होते हैं और चापलूस तथा काहिल शिक्षकों का प्रभाव प्रधानाचार्य पर थोड़े समय के लिये रहेगा किन्तु मेहनती और ईमानदार शिक्षक सदैव प्रधानाचार्य द्वारा सराहा जायगा ।

निरीक्षण अधिकारी द्वारा––

समय–समय पर नामिका निरीक्षण (पैनल इन्सपैक्शन) होते हैं । इनमें जिला विद्यालय निरीक्षक एवं मंडलीय विद्यालय निरीक्षक निरीक्षण करते हैं । सुयोग्य अध्यापकों का मूल्यांकन उस समय होता है अतः शिक्षक को वर्ष भर अपने कार्य को वर्ष भर में कार्य विभाजन करने के पश्चात् सुचारुरूप से करना चाहिये ।

विद्यालय के वार्षिक समारोहों में समुदाय और अभिभावकगण शिक्षक के कार्य का मूल्यांकन करते हैं ।

पाठ––सहगामी क्रियाओं के माध्यम से कक्षा के बाहर का शिक्षक का मूल्यांकन होता है । शिक्षक को इसके लिये तैयार रहना चाहिये ।

प्रश्न

1. अध्यापक का स्व मूल्यांकन क्यों आवश्यक है ? संक्षेप में लिखें ।
2. अध्यापक का अधिकारियों द्वारा मूल्यांकन किस प्रकार किया जाता है ? विस्तार से लिखिए ।

पाठ--20

शिक्षा में गुणात्मक सुधार

शिक्षा को आत्मोपयोगी, परिवारोपयोगी, समाजोपयोगी तथा राष्ट्रोपयोगी बनाने के लिये शिक्षा में गुणात्मक सुधार की आवश्यकता है। आज कल विद्यालयों में छात्रों की संख्या में असमान वृद्धि, भौतिक वस्तुओं का अभाव, शिक्षकों की संख्या में कमी आदि समस्याओं के कारण विद्यालय की शैक्षिक दशा में अवनति होती जा रही है। अतः शिक्षा के गुणात्मक पक्ष का उन्नयन अत्यन्त आवश्यक है। ज्ञान की विविधा शास्त्राओं में हुये विकास एवं प्रतिपल बढ़ते हुये विकास की गति को देखते हुये पाठ्य नवीनीकरण एक सतत क्रिया है। इसके अनुरूप विद्यालयों में इनकी पूर्ति एवं पालन अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों एवं शिक्षण विधियों का ज्ञान करा कर ही शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाया जा सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि शिक्षकों को समय-समय पर अभिनवीकरण किया जाये। विद्यालयों में अध्यापकों तथा छात्रों की संख्या को दृष्टिगत कर शिक्षण सामग्री तथा संदर्भ वस्तुओं की व्यवस्था की जाये।

पुस्तकालयों की व्यवस्था की जाये। उनमें समयानुकूल नवीन पुस्तकों से समृद्ध रखें। छात्रों तथा अध्यापकों को उनके अध्ययन तथा प्रयोग की तरफ अनुप्रेरित किया जाय।

समय-समय पर विद्यालय विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाये। विद्यालय के शैक्षिक उन्नयन के लिये विभिन्न विषयों पर आयोजित गोष्ठियों में शिक्षकों को भाग लेने के लिये प्रोत्साहित किया जाये।

देश तथा समाज की वर्तमान अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में विद्यालय का दायित्व बढ़ गया है। उसके द्वारा ऐसे नियोजित तथा सम्बन्धित प्रयास अपेक्षित हैं जिनसे शिक्षा का सम्बन्ध राष्ट्रीय विकास, उत्पादन तथा आर्थिक समृद्धि से जुड़ सके और वे सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों तथा राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक हों।

विद्यालय समुदाय में जनतंत्र धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद के आदर्शों के व्यावहारिक प्रशिक्षण हेतु अनुकूल वातावरण की सृष्टि करें एवं उचित पथ प्रदर्शन करें।

शिक्षकों के कार्य के स्तर में निरन्तर सुधार के लिये कार्य का मूल्यांकन तथा पथ प्रदर्शन किया जाये।

विद्यालय में ऐसी गोष्ठियों का आयोजन किया जाये जिसमें छात्र, अभिभावक तथा शिक्षक समान रूप से भाग लें। इससे अभिभावक विद्यालय के सुधार में रुचि लेंगे। समय-समय पर शिक्षक और छात्र अन्य आदर्श विद्यालयों का निरीक्षण करें।

प्रश्न

शिक्षा में गुणात्मक सुधार किस प्रकार किया जा सकता है? विस्तार पूर्वक समझाकर लिखिये।

पाठ--21

सहपाठ्यक्रमीय क्रिया-कलाप

शिक्षा का उद्देश्य केवल पुस्तकीय ज्ञान देना ही नहीं है अपितु प्रजातंत्र के भावी नागरिकों का समुचित रूप से मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक विकास करके उन्हें कुशल नागरिक बनाना है। इसी आधार पर पाठ्यक्रमीय सहगामी क्रियाओं को शिक्षा व्यवस्था में समुचित स्थान प्रदान करना आवश्यक है।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं से लाभ--बालक इनमें सामूहिक रूप से भाग लेते हैं जिससे उन्हें सामूहिक जीवन का अनुभव प्राप्त होता है तथा उनमें कुशल नागरिक के गुणों का आविर्भाव होता है। कर्तव्य परायणता स्वावलम्बन, नेतृत्व, स्वचिन्तन, आत्म नियंत्रण, सहनशीलता तथा उत्तरदायित्व के निवहन की क्षमता के साथ-साथ अनुशासन प्रियता का उद्भव होता है। इन क्रियाओं द्वारा बालकों में शारीरिक-मानसिक विकास समुचित रूप से होता है। यह क्रियायें विद्यालय, बालक और समाज में गहन सम्बन्ध स्थापित करती हैं।

खेल-कूद--खेलना बच्चों की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। शिक्षा में इसकी विशिष्ट उपयोगितायें हैं। खेल से बच्चों को निम्नलिखित लाभ होते हैं--

(1) शरीरिक विकास।

(2) बौद्धिक विकास।

(3) मानसिक विकास।

(4) परस्पर मिलजुल कर रहने की भावना का विकास।

(5) सामाजिक विकास।

(6) आत्म नियंत्रण की भावना का विकास।

विद्यालयों में खेलों की व्यवस्था--

विद्यालय में प्रधानाध्यपक को चाहिये कि खेलों की व्यवस्था के लिए एक ऐसे अध्यापक की नियुक्ति की जाये जो खेलों के विषय में विशेष ज्ञान रखे, साथ ही स्वयं भी खिलाड़ी हो। विद्यालय समय सारणी में खेलकूद का घन्टा नियमित रूप से रखा जाये। विभिन्न प्रकार के खेलों की व्यवस्था होनी चाहिये। क्रीड़ा सामग्री की व्यवस्था सुविधानुसार विद्यालय में होनी चाहिए। अन्य अध्यापकों का भी खेलों में सहयोग हो। भारतीय खेलों को भी स्थान देना आवश्यक है। समस्त छात्रों को खेल-कूद का समान अवसर देना चाहिये। छात्रों के खेल-कूद का चयन करते समय उनकी शरीरिक एवं मानसिक क्षमता का ध्यान रखना चाहिए।

(1) छात्रों के शरीर का उचित गठन करना तथा उसे स्वस्थ रखना :

(2) विभिन्न शारीरिक कोषकों में उपयोगी मांसपेशियों तथा अंगों के समन्वय का विकास करना।

(3) व्यक्तिगत तथा सामूहिक खेलों द्वारा छात्रों में साहस, विवेक, सतर्कता एवं सहयोग की भावना विकसित करना।

(4) छात्रों को प्रतियोगिता में आनन्द एवं उल्लास की अनुभूति कराना।

(5) रुचिकर शरीरिक क्रिया कलापों द्वारा छात्रों के मानसिक एवं भावात्मक स्वरूप का विकास करना।

अध्यापकों को चाहिए कि अपने आचार-विचार से बच्चों के जीवन पर अच्छा प्रभाव डालें जिससे उसका शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक विकास समुचित रीति से हो सके ।

व्यायाम तथा आसन--

खेल-कूद के समान शरीरिक व्यायाम तथा आसन बालक के स्वास्थ्य को विकसित करने में विशेष सहायक होते हैं । व्यायाम और आसनों से बालकों के समस्त अंगों का सन्तुलित विकास होता है तथा मांस पेशियां दृढ़ होती हैं । व्यायाम पाचन-तंत्र को भी ठीक करते हैं, परन्तु प्राथमिक स्तर पर बालकों को अधिक थकने वाले व्यायाम न कराये जायें ।

आजकल आसनों को शारीरिक स्वस्थता के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा है । नेशनल फिटनेस कोर (N. F. C.) ने कक्षा 6, 7, 8 के लिये विभिन्न आसनों को अपने पाठ्यक्रम में इस कारण ही स्थान दिया है । कक्षा 6 व 7 के लिए निम्नलिखित आसनों को रखा गया है :--

(1) भुजंग आसन ।

(2) अर्द्धसुलभ आसन ।

(2) धनुरआ ।

(4) चक्रासन ।

(5) वक्रासन ।

कक्षा आठ के लिये--

(1) वक्षासन ।

(2) सुलभ आसन ।

(3) बज्रासन ।

(4) वक्र आसन ।

आसन सदा प्रशिक्षित व्यक्ति की देखरेख में कराये जायें क्योंकि गलत आसन से लाभ के स्थान पर हानि होने की अधिक सम्भावना है ।

स्काउटिंग तथा गाइडिंग--

इस संगठन का शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व है । बालकों को सहयोग, प्रेम, स्वदेश प्रेम तथा चरित्र निर्माण की शिक्षा देने के लिए इस संगठन का प्रयोग बड़े प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है ।

स्काउटिंग के जन्म दाता सर राबर्ट पावेल थे । हमारे देश में इसको सन् 1911 में अपनाया गया । इसने शीघ्र ही देश भर में लोक प्रियता प्राप्त कर ली । स्काउटिंग अनेक दृष्टियों से छात्रों के लिये लाभदायक है । इसमें खेल-खेल में बालक अनेक बातें सीख जाता है । बालकों को वन भ्रमण द्वारा प्रकृति के निकट आने का अवसर मिलता है । प्रत्येक छात्र को प्रतिज्ञा करनी पड़ती है कि वह सत्य बोलेगा तथा ईश्वर और देश के प्रति जीवन भर वफादार रहेगा । इस संस्था का संगठन इस प्रकार है--

(1) 7 से 11 वर्ष तक के बालक शेर बच्चे (cub) के नाम से पुकारे जाते हैं ।

(2) 11 से 17 वर्ष तक के बालक स्काउट कहलाते हैं ।

(3) 17 वर्ष से अधिक आयु के छात्र रोवर्स के नाम से पुकारे जाते हैं ।

बालिकाओं के लिए गर्ल-गाइडिंग का संगठन है, जो इस प्रकार है :--

(1) 11 वर्ष से कम आयु की बालिकायें बुल-बुल (Blue bird) के नाम से पुकारी जाती हैं ।

(2) 11 से 16 वर्ष की बालिकायें गर्ल्स गाइड कम्पनी में रखी जाती हैं ।

(3) 16 वर्ष से अधिक आयु की बालिकायें रेंजर कम्पनी में रखी जाती हैं ।

प्राथमिक चिकित्सा एवं जूनियर रेडक्रास-बालक क्रियाशील होते हैं । क्रिया में उन्हें चोटें भी लगती हैं । अतः प्रारम्भिक चिकित्सा की तत्काल आवश्यकता होती है रेडक्रास के अन्तर्गत स्वरूप में पाठशाला में चिकित्सालय की व्यवस्था करना है । प्रारम्भिक चिकित्सा के प्रयोग में आने वाली साधारण औषधियों तथा पट्टियों आदि का प्रबन्ध रहता है । इसमें स्वस्थ जीवन के लिए सामान्य नियमों के बड़े-बड़े चार्ट, चित्र आदि बनवाकर विद्यालयों में टांगने चाहिये । मैजिक लैन्टर्न द्वारा साधारण रोगों से बचने के उपाय तथा उनके फैलने के कारणों आदि पर स्वास्थ्य विभाग की सहायता से प्रकाश डाला जा सकता है । इसकी व्यवहारिक शिक्षा भी आवश्यक है । नदियों, तालाबों में तैरना सिखाकर डूबने वालों को बचाना उसके अनिवार्य अंगों में से एक है । प्रत्यक्ष रूप से यह व्यक्तिगत लाभ ही लगता है परन्तु इसका सामाजिक महत्व भी कम नहीं है ।

छोटे-छोटे रेडक्रास आन्दोलन विश्व व्यापी होते जा रहे हैं । बड़े-बड़े युद्धों में इन संस्थाओं ने बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये हैं । भविष्य में आशा है कि इसके द्वारा और अधिक मानव कल्याण कार्य संभव हो सकेंगे ।

हाबी क्लब

हाबी (हाबा क्लब) भारत में अभी इन क्लबों का प्रचलन बहुत कम है। इन क्लबों के माध्यम से स्वभाव तथा रुचि वाले अनेक लोग एकत्र होते हैं जिन्हें प्रतियोगिताओं के माध्यम से अपनी योग्यता प्रदर्शन करने का अवसर प्राप्त होता है । इनके आयोजन में सबसे अधिक विचारणीय वस्तु यह होती है कि विद्यालय में जितनी अधिक से अधिक रुचियों को बढ़ाने का अवसर दिया जायेगा, क्लब उतना ही अधिक सफल होगा ।

हाबी क्लब के माध्यम से बच्चों में अनेक समाजोपयोगी आदतें डाली जा सकती हैं । हाबी क्लब का विशेष उद्देश्य बच्चों में अच्छी आदतों का डालना भी है जैसे टिकट जमा करना, सिक्के जमा करना, फूलों तथा पत्तियों के एलबम बनाना, संगीत, चित्रकला, राष्ट्रीय नेताओं के चित्रों का एलबम रखना आदि । हाबी क्लबों द्वारा बालकों के अन्दर सुरुचि का विकास होता है ।

सांस्कृतिक व साहित्यिक कार्यक्रम--

इनके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रम आयोजित किये जा सकते हैं--

(1) अभिनय, नाटक या एकांकी प्रदर्शन ।

(2) साहित्यिक सभायें ।

(3) कविता पाठ व अन्त्याक्षरी ।

(4) संगीत-गायन-वादन ।

(5) लोकगीत, युगलगान समूहगान ।

(6) लोक नृत्य ।

(7) वाद-विवाद प्रतियोगिता ।

(8) भाषण प्रतियोगिता ।

अभिनय--मानव प्राचीन काल से अभिनय के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति करता आ रहा है । दर्शकों को प्रभावित करने की इसमें विशेष क्षमता रही है किन्तु शिक्षकों को

इसमें नेतृत्व प्रदान करना चाहिए । वह अभिनय के विभिन्न रूपों, संवादों, परिसंवादों, कलात्मक संगीतों, वेषभूषा आदि पर प्रकाश डाल कर बालकों के ज्ञान-वर्धन के साथ-साथ उनका उत्साह वर्धन कर सकता है अभिनय का उद्देश्य बालकों को शिक्षा देना है अतः यह ध्यान रहे कि अभिनय शिक्षाप्रद ही हो ।

साहित्यिक व सांस्कृतिक कार्यक्रम--पाठ्यक्रम में साहित्य का प्रथम स्थान रहता है । इसके माध्यम से बाल ज्ञानार्जन तथा भावाभिव्यक्ति करता है । अतः विद्यालय में छोटी-छोटी साहित्यिक सभाओं का आयोजन कर लेना चाहिये । साहित्यिक क्रियाओं में वाद-विवाद व्याख्यान, कवि गोष्ठी, कवि दरबार, निबन्ध तथा कहानी लेखन प्रतियोगिता, अन्त्याक्षरी आदि क्रियायें आती हैं । इससे छात्रों का स्वस्थ मनोरंजन होने के साथ-साथ ज्ञानात्मक विकास भी होता है । वाद-विवाद व शास्त्रार्थ में भाग लेने पर छात्र को अनेकानेक लाभ होते हैं । उनका चर्तुमुखी विकास होता है । सर्व प्रथम बालक अपनी बात व्यक्त करने में झिझक अनुभव करता है किन्तु शिक्षक प्रोत्साहन द्वारा इस कमी को दूर कर उसे कुशल वक्ता बना सकता है । इन्हीं सभाओं के माध्यम से कविता पाठ अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता, गायन, वादन आदि का आयोजन हो सकता है । 26 जनवरी, 15 अगस्त गांधी जयन्ती आदि राष्ट्रीय दिवसों पर तथा राष्ट्रीय त्योहार जैसे होली, दिवाली, दशहरा, ईद क्रिसमस, बैशाखी आदि तथा महापुरुषों के जन्म दिन पर बाल सभा एवं कुमारी सभा द्वारा समारोहों का आयोजन किया जा सकता है। इनके माध्यम से बच्चों में स्कूल के प्रतिप्रेम उत्पन्न होता है और उनमें सहयोग, उत्तरदायित्व के निर्वाह, सामाजिकता तथा संगठन करने की क्षमता विकसित होती है । इन आयोजनों के माध्यम से शिक्षक प्रधानाध्यापक तथा अभिभावक भी एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आते हैं और विद्यालय की कठिनाइयों एवं उपलब्धियों से परिचित होकर उनका समाधान एवं विकास कर सकते हैं ।

प्रश्न

21--पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायों का क्या महत्व है ? विद्यालयों में इनका क्या महत्व है ? विद्यालय में इन क्रियाओं का संगठन करने में आप किन बातों का ध्यान रखेंगे ?

22--आप अपने विद्यालय में कौन-कौन से पाठ्य सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था करेंगे ? कारण सहित स्पष्ट कीजिये ।

खण्ड ख

विद्यालय तथा समुदाय

पाठ-२२

विद्यालय तथा समुदाय

विद्यालय वे संस्थायें हैं जिन्हें सभ्य मनुष्य के द्वारा इस उद्देश्य से स्थापित किया ता है कि समाज में सुव्यवस्थित और योग्य अवस्थता के लिए बालकों की तैयारी में सहायता ले।

विद्यालय का जन्म परिवारों की शैक्षिक असमर्थता तथा दैनिक व्यस्तता के कारण ा। यदि माता-पिता समय देने का प्रयास भी करें, तो वे अपने बच्चों को कुशलतापूर्वक क्षा नहीं दे सकते क्योंकि हर माता-पिता शिक्षण की वैज्ञानिक प्रणालियों से तथा शिक्षण ास्त्र से पूर्णतया परिचित नहीं होते।

विद्यालय और समाज के सम्बन्ध

समाज विद्यालय की स्थापना करके इस बात की अपेक्षा करता है कि वह बालकों में गुणों और आदर्शों की स्थापना करें, जिससे कि वे समाज की विभिन्न क्रियाओं में कुशलता भाग ले सकें। इस प्रकार समाज विद्यालयों की स्थापना अपने हित में करता है और द्यालयों का महत्व तभी तक है जब तक वे समाज की मांगें पूरी करते रहते हैं।

समाज विकास में विद्यालय की भूमिका

समाज में विद्यालयों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। यदि इन्हें राष्ट्र का प्रमुख आधार ा जाय तो अनुचित नहीं होगा। भावी समाज का निर्माण विद्यालयों में ही होता है। द्यालय मुख्यतया एक सामाजिक संस्था है। समाज के विकास और संस्कृति के संरक्षण दृष्टि से विद्यालय का महत्व है।

(1) सामाजिक विकास में योग प्रदान करना

विद्यालय के माध्यम से सामाजिक विकास की क्रिया में विशेष सहयोग प्राप्त किया सकता है। समाज को जिन व्यवसायों, उद्योगों तथा कौशलों की आवश्यकता होती है, ा सब के प्रशिक्षण की व्यवस्था विद्यालय में ही की जा सकती है।

(2) सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्ति के साधन

वर्तमान युग में सभ्यता और संस्कृति का इतना विकास हो गया है कि उसे बालकों केवल परिवार के माध्यम से सरलता से ही दिया जा सकता है अपितु विद्यालय जैसी ात्रित और औपचारिक संस्था की आवश्यकता है। वास्तव में सभ्यता और संस्कृति की क्षा, विकास तथा इसके प्रसार के लिए विद्यालय से अच्छा कोई साधन नहीं है।

(3) जीवन की जटिलता

प्राचीन काल की भांति आज मानव जीवन सरल नहीं है। जीवन के हर क्षेत्र में मतायें बढ़ती ही जा रही हैं। मनुष्य उसी को सुलझाने में लगा रहता है। उसे इतना काश नहीं मिलता कि वह अपने बच्चों की शिक्षा व देख-भाल कर सके। अतः यह कार्य द्यालयों को ही करना पड़ता है।

(4) संस्कृति का संरक्षण और उसका विकास

विद्यालय जहां संस्कृति का संरक्षण करते हैं वहीं दूसरी ओर युग के मांग के अनुसार संस्कृति को ा रूप भी देते हैं। विद्यालय में विभिन्न धर्म, परिवारों तथा संस्कृतियों के बालक अध्ययन

करने आते हैं जहां उनके सामाजिकता, सहयोग, शिष्टाचार जैसे गुणों का स्वतः ह विकास हो जाता है। इसी से विद्यालय बालकों के बहुमुखी विकास के महत्वपूर्ण अभिकर माने गये हैं।

(5) परिवार और विश्व की जोड़ने वाली शृंखला है

बालक परिवार में रह कर प्रेम, दया, सहानुभूति, सहनशीलता तथा सेवा की भावनाओं को सीखता है परन्तु केवल परिवार में रहते हुए उसे वाह्य जगत का अनुभव नहीं होता विद्यालय में आकर बालक वाह्य संसार से परिचित होता है। विद्यालय बालक के पारिवारिक जीवन को वाह्य जीवन से जोड़ने वाली कड़ी के रूप में कार्य करता है जिससे उसका दृष्टि कोण विशाल हो जाता है।

(6) विशिष्ट वातावरण की व्यवस्था

विद्यालय बालकों को विशिष्ट वातावरण प्रस्तुत करता है। विद्यालय के सुन्दर तथ नियोजित वातावरण में रहकर वह अपने अन्दर उत्तम गुणों का विकास करता है।

(7) व्यक्तित्व का सामञ्जस्यपूर्ण विकास

विभिन्न अनौपचारिक संस्थायें जैसे परिवार, समुदाय आदि का कोई पूर्व निश्चित उद्देश्य तथा पूर्व नियोजित कार्यक्रम नहीं होता। लेकिन विद्यालय का समस्त कार्यक्र नियोजित और व्यवस्थित ढंग से चलता है। अतः उनका बालक पर अच्छा प्रभाव पड़त है। ऐसे वातावरण से उसके व्यक्तित्व का सामञ्जस्यपूर्ण विकास होता है।

(8) परिष्कृत समाज का रूप

विद्यालय एक समाज है। विद्यालय की योजना समाज के अन्दर एक सुव्यवस्थि तथा उच्चतर समाज के रूप में की जाती है। अतः उसमें वाह्य समाज के गुण अधिकां में प्राप्त होते है, किन्तु दोष न्यूनतम होते हैं। इस प्रकार पाठशाला को हम सम्पूर्ण समा के अन्तर्गत एक छोटा परिष्कृत समाज कह सकते है।

(9) सामाजिकता का प्रशिक्षण केन्द्र

विद्यालय विभिन्न स्तर के परिवारों, समुदायों तथा जातियों के छात्र अध्ययन के लिए आते हैं तथा परस्पर सहयोग से काम करना सीखते हैं। इस प्रकार उनके विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास होता है।

(10) कुशल और शिक्षित नागरिकों का निर्माण

कुशल, योग्य और शिक्षित नागरिक जनतंत्र की रीढ़ होते हैं। विद्यालय शिक्षित नागरिकों की जननी है। विद्यालय द्वारा छात्रों को नागरिक के कर्तव्यों और अधिकारों क ज्ञान कराया जाता है तथा उनमें सहयोग, सहकारिता, प्रेम तथा अनुशासन की भावना क विकास किया जा सकता है।

(11) अन्य क्षेत्रों में योगदान

(1) राष्ट्रीय कार्यक्रम का आयोजन करके राष्ट्रीय विकास में योगदान देते हैं।

(2) इस समय राष्ट्र की बुनियादी आवश्यकता प्रजातंत्र, समाजवाद तथा धर्म निरपेक्षता की है इन गुणों के विकास में विद्यालय अपना योगदान देता है।

(3) विद्यालय हरित और श्वेत क्रांति में समाज को अपना योगदान कर सकता है।

(4) विद्यालय साक्षरता अभियान चलाकर समाज में फैली निरक्षरता में अपना सहयोग प्रदान कर सकता है।

(5) विद्यालय द्वारा परिवार नियोजन, बाल विवाह तथा दहेज प्रथा के उन्मूलन में हयोग मिलता है।

(6) विभिन्न सामुदायिक कार्यक्रमों के पूरा करने में विद्यालय सहायक होते हैं। मदान करके छात्र सड़क तथा पुल आदि के निर्माण में अपना सहयोग दे सकते हैं।

समुदाय

समुदाय का एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है और इस क्षेत्र की सीमाओं के न्दर ही सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। आवश्यक आवश्यकताओं की ति आदान-प्रदान के आधार पर होती है, अर्थात् समुदाय के सभी सदस्य अपनी आवश्यकताओं ो वस्तुयें अथवा सेवायें दूसरे सदस्यों से प्राप्त करते हैं।

विद्यालय और समाज के सम्बन्ध

समाज विद्यालय की स्थापना करके इस बात की अपेक्षा करता है कि वह बालकों में भी गुणों और आदर्शों की स्थापना करे जिससे कि वे समाज की विभिन्न क्रियाओं में कुशलता भाग ले सकें। इस प्रकार समाज विद्यालयों की स्थापना अपने हित में करता है और द्यालयों का महत्व तभी तक है जब तक वे समाज की मांगें पूरी करता रहता है।

विद्यालय का सामुदायिक केन्द्र के रूप में विकास

स्वतंत्रता के पश्चात् यह अनुभव किया जाने लगा है कि विद्यालय और समाज के ध्य घनिष्ट सम्पर्कों की परम आवश्यकता है। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो जाता है क उन साधनों को अपनाया जाय जिससे कि विद्यालय और समाज के सम्पर्कों में निकटता ा सके और परम्परागत शिक्षा के उन दोषों को दूर किया जा सके जिनके कारण विद्यालय ौर समाज के मध्य एक खाई बनी हुई है।

1) स्थानीय समुदाय का अध्ययन और उसे सहयोग देना—

विद्यालय को समाज के निकट लाने का प्रथम उपाय यह है कि वह स्थानीय समुदाय ा समाज को भली प्रकार समझे तथा यथा सम्भव विभिन्न क्षेत्रों में उसे सहयोग देने के लये प्रयत्नशील रहें।

(2) पाठ्यक्रम समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल हों—विद्यालय का पाठ्यक्रम केवल द्धान्तिक और पुस्तकीय न हो, वरन् उसमें उन क्रियाकलापों को भी स्थान दिया जाय, जो माज के लिय उपयोगी हों। प्रो० ओलसेन के शब्दों में "पाठ्यक्रम का निर्धारण समाज की ानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाय जो कि व्यक्तिगत जीवन तथा सामूहिक जीवन को प्रभावित करें।" इस प्रकार का पाठ्यक्रम विद्यालय और समाज को निकट लाने में हयोग देता है।

(3) विद्यालय समाज को उपयोगी सूचनायें प्रदान करें—विद्यालय का कर्तव्य है कि ह समाज की प्रगति में अपना योग देने के लिये विभिन्न उपयोगी सूचनाओं को समय-समय र उसके सदस्यों को प्रदान करता रहे। विद्यालय में जो अनुसंधान प्रयोगों के निष्कर्ष निकलते उनको समाज को जानकारी देनी चाहिए।

(4) विद्यालय समुदाय के समस्त शैक्षिक साधनों से सम्पर्क स्थापित करें—बालक समाज ो विभिन्न गतिविधियों तथा समस्याओं का ज्ञान अनौपचारिक साधनों द्वारा ही प्राप्त करता । अतः विद्यालयों को शिक्षा के इन समस्त अनौपचारिक साधनों से सम्पर्क रखना चाहिए ससे कि छात्र समाज की तत्कालीन दशा, आवश्यकताओं और गति विधियों को ठीक कार से समझ सके।

(5) पुस्तकालय और वाचनालय समाज के लिए खुले रहे--समाज के सदस्य विद्यालय आकर समाचार-पत्र पढ़ने तथा पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त करने की सुविधायें प्राप्त कर सकें तो उनके हृदय में विद्यालय के प्रति अपनत्व जागेगा।

(6) विद्यालय में रात्रि पाठशाला या प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र की स्थापना--विद्यालय को अपने निकट के वातावरण में साक्षरता का प्रसार करने के लिए रात्रि पाठशाला और प्रौ शिक्षा का आयोजन कर सकता है। इस कार्य में विद्यार्थियों और शिक्षकों को भी उत्साह पू ढंग से कार्य करना चाहिये।

(7) समाज सेवा में भाग लेना--जब नगर गांव में किसी प्रकार का संकट आयें त विद्यालय को संकट पीड़ितो की हर प्रकार से सहायता करनी चाहिये। ऐसा करने से विद्याल छात्र समाज के निकट आयेंगे।

(8) समाज के सदस्यों को आमन्त्रित करना--विद्यालयों में समय-समय पर होने वा सांस्कृतिक कार्यक्रमों, सम्मेलनों तथा प्रदर्शनियों में समाज के सदस्यों को आमन्त्रित करना चाहि जिससे उनमें विद्यालय के प्रति राग उत्पन्न हो।

(9) श्रमदान क्लबों का संगठन--विद्यालय में कुछ श्रमदान क्लबों का भी संगठ किया जाय। इन क्लबों के द्वारा समाज की विभिन्न समस्याओं को हल करने के लि भेजा जाये।

(10) अध्यापकों द्वारा अभिभावकों से संपर्क--अध्यापकों और अभिभावकों के मध्य सहयोग और संपर्क की स्थापना के लिये विद्यालय में एक अभिभावक संघ की स्थापना की जाय जिससे अध्यापकों को अभिभावकों, का, विद्यालय तथा छात्रों की उन्नति में पूरा सहयोग मिल मिल सके।

(11) समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को विद्यालय में बुलाना--विद्यालय और समाज के सम्बन्धों को मधुर बनाने के लिए तथा दोनों को एक दूसरे के निकट लाने के लिए कभी-कभी समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को व्याख्यान आदि के लिए विद्यालय में बुलाया जाना चाहिए। इससे बालकों का ज्ञान भी बढ़ेगा साथ ही छात्रों को समाज की विभिन्न समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान होगा।

(12) समाज सुधार में योग--विद्यालय का केवल यही कार्य नहीं है कि छात्रों को वर्तमान सामाजिक और भौतिक परिस्थितियों के अनुकूल बना दे वरन् यह भी देखना है कि नवोदित पीढ़ी से आगे बढ़े। बालकों को सामाजिक दोषों के सुधार के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिये। मद्यपान, छुआ-छूत ,दहेज अस्पृश्यता तथा जनसंख्या विस्फोट के विरुद्ध आन्दोलन चलाना चाहिये।

(13) अन्य उपाय :--

(i) सहकारी भण्डार की स्थापना।

(ii) युवक मण्डल दल।

(iii) संक्रामक रोगों की जानकारी देना।

(iv) प्राथमिक चिकित्सा की व्यवस्था।

(v) विद्यालय में साग-सब्जी उगाकर उसका निःशुल्क वितरण।

(vi) फसल के समय अवकाश देकर सहयोग देना।

समुदाय के सहयोग से विद्यालय की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति--विद्यालय और समाज के सहयोग से ही हमारा राष्ट्र समृद्ध हो सकता है। जैसा कि एण्ड्रो ने लिखा है "समुदाय बिना कुछ किये किसी बात की आशा नहीं कर सकता है। यदि समुदाय चाहता

कि उसके नवयुवक उसकी अच्छी प्रकार सेवा करे तो उसे उन स शैक्षिक लाभो को जुटाना हिये, जिसकी नवयुवकों को आवश्यकता है।" समुदाय विद्यालय को निम्नलिखित ढंग से ना सहयोग दे सकता है ।

(i) विद्यालय भवन का निर्माण करके ।

(ii) पुस्तकालय स्थापित करके ।

(iii) विद्यालय की सफाई व मरम्मत कराके ।

(iv) कृषि तथा खेल की भूमि देकर ।

(v) विद्युत् व्यवस्था करके ।

(vi) रात्रि पाठशालाओं में प्रकाश की व्यवस्था करके ।

(vii) अल्पाहार की समुचित व्यवस्था करके ।

(viii) पुस्तकें दान करके ।

(ix) कार्यानुभव में सहायता करके ।

(x) पेयजल की व्यवस्था करके ।

(xi) समाचार पत्र की व्यवस्था करके ।

(xii) निर्धन छात्रों की सहायता करके :

(xiii) प्रवेश में सहायता ।

(xiv) अध्यापकों और अध्यापिकाओं की अभाव व सुरक्षा में सहयोग देकर ।

(xv) ह्रास व अवरोधन की समस्या के हल में सहयोग देकर ।

ीकी कार्यकलापों में विशेषज्ञों की सहायता--

भारत एक ग्राम प्रधान देश है । देश की अधिकांश जनता ग्रामों में निवास करती अतः राष्ट्र की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि ग्रामों का उत्थान किया जाय । ीण किसान तकनीकी जानकारी से दूर है । उसका मूल कारण है कि अभी निरक्षरता त है । अध्यापक स्थानीय समस्याओं के सुलझाने में अपना योग दे सकता है । इस न्ध में उसे विभिन्न लघु उद्योग के विषय में जानकारी रखना आवश्यक है । विशेषज्ञों ाहायता लेकर समुदाय को कार्यों में योग देना उनका कर्तव्य है ।

(1) पशु चिकित्साधिकारी--इनकी सहायता से गांव के पशुओं की चिकित्सा संबंधी स्याओं को हल करना ।

(2) वन विभाग ।

(3) सिंचाई विभाग ।

(4) कृषि विभाग तथा खण्ड विकास अधिकारी--फसल सुरक्षा, उत्तम बीज, उत्तम- प्राप्ति की जानकारी देना ।

(5) चिकित्सा अधिकारी--स्वास्थ्य संबंधी जानकारी के लिए मार्ग दर्शन करना ।

(6) परिवार य समाज कल्याण विभाग--जनसंख्या नियंत्रण तथा परिवार नियोजन न्धी विभिन्न जानकारियां प्राप्त करने के लिए ।

(7) उद्योग विभाग--लघु उद्योग या कुटीर उद्योग की जानकारी प्रदान कर के लिये ।

(8) डाकतार विभाग--अल्प बचत योजना के विषय में ।

(9) सहकारी बैंक--कृषि या लघु उद्योग के विकास के लिए ऋण लेने संबंध जानकारी के लिए ।

राष्ट्रीय उत्कर्ष हेतु किये जा रहे प्रयास के संदर्भ में विद्यालय तथा समाज के उत्तरोत्त सामीप्य का महत्व--

स्वतंत्रता के पश्चात् हमारे देश को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि अनेक समस्याओं का समाधान करना पड़ रहा है । निर्धनता, जनसंख्या का तीव्रता से बढ़ना, जनसंख्या के अनुपात में पैदावार का न बढ़ना, शहर और गांव की पृथकता, राष्ट्रीय संपत्ति के प्रति उपेक्षा की भावना, उच्च जातियों द्वारा निम्न जातियों का शोषण आदि ऐसी समस्यायें हैं जिनका निदान केवल सरकार द्वारा ही नहीं किया जा सकता। इन समस्याओं के निराकरण हेतु विद्यालय को भी सक्रिय भूमिका निभानी होगी । विद्यालय को समाज को राष्ट्रीय विकास की उन योजनाओं के निकट लाना है वे निम्नलिखित हैं :--

(1) पंचवर्षीय योजनाओं के कार्यक्रम का जनसाधारण को ज्ञान कराना ।

(2) राष्ट्रीय एकता के महत्व को बताना तथा साम्प्रदायिकता तथा विघटनकारी शक्तियों से जनसाधारण को सचेत करना ।

(3) जनसंख्या नियंत्रण की आवश्यकता और परिवार नियोजन के महत्व को बताना ।

(4) समुदाय के सदस्य को वन महोत्सव तथा वृक्षारोपण के महत्व के विषय में बताना ।

(5) अल्प बचत योजना की उपयोगिता पर प्रकाश डालना तथा उसे सफल बनाने के लिए जनसाधारण को प्रोत्साहित करना ।

(6) मतदान के महत्व को बताना तथा बिना किसी लोभ लालच या जातिगत दबाव में आकर उसका उपयोग सिखाना ।

(7) राष्ट्रीय संपत्ति के प्रति प्रेम उत्पन्न करना तथा उसकी सुरक्षा व संरक्षण के प्रति जनसाधारण को जागरूक करना ।

(8) श्रमदान के महत्व पर प्रकाश डालना ।

(9) अस्पृश्य तथा पिछड़ी जातियों के प्रति उच्च जातियों में सहयोग और प्रेम की भावना उत्पन्न करना ।

(10) सरकार द्वारा चलाये गये विभिन्न समाज कल्याण, साक्षरता तथा कृषि सम्बन्धी कार्यक्रम को स्पष्ट करना तथा जनसाधारण को उनमें सहयोग देने के लिए प्रोत्साहित करना ।

प्रश्न

1--समाज में विद्यालय का क्या महत्व है ? समाज विकास में विद्यालय की क्या भूमिका रहती है ?

2--विद्यालय को सामुदायिक विकास केन्द्र के रूप में किस प्रकार विकसित किया जा सकता है ?

3--विद्यालय विकास में समुदाय के क्या उत्तरदायित्व है ? प्रकाश डालिये।

4--राष्ट्रीय उत्कर्ष के प्रयासों में विद्यालय तथा समाज किस प्रकार योगदान कर सकते हैं ?

खण्ड ग

स्वास्थ्य शिक्षा

पाठ २३

विद्यालयी स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम एवं शिक्षक की भूमिका

स्वास्थ्य शिक्षा का अभिप्राय :—

स्वास्थ्य शिक्षा वह ज्ञान खंड है जोकि व्यक्ति समुदाय और जाति की स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतों तथा दृष्टिकोणों को अच्छा बनाने में सहायक होता है । स्वास्थ्य शिक्षा को निम्न उप विभागों में रक्खा जा सकता है :—

1—जन स्वास्थ्य शिक्षा ।

2—विद्यालय स्वास्थ्य शिक्षा ।

जन स्वास्थ्य शिक्षा व्यक्तियों को जन स्वास्थ्य सेवाओं के चिकित्सकों, परिचारिकाओं को व्यावसायिक रूप से तैयार करती है यह शिक्षा स्वस्थ्य जीवन व्यतीत करने के लिये स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न संस्थाओं द्वारा व्यक्तियों को दी जाती है ।

विद्यालयी स्वास्थ्य शिक्षा—

विद्यालयों में संगठित संचालित स्वास्थ्य शिक्षा है । विद्यालय का प्रधानाचार्य बालकों का सर्वांगीण विकास करता है । इस कार्य की पूर्ति विद्यालय तभी कर सकता है जबकि वहां बालकों की शारीरिक मानसिक स्वस्थता के लिये उपयुक्त परिस्थितियां तथा व्यवस्थायें उपलब्ध हों ।

विद्यालय में स्वास्थ्य शिक्षा कार्यक्रम—

विद्यालय में स्वास्थ्य शिक्षा का कार्यक्रम/प्रबन्ध दो कारणों से अत्यंत आवश्यक है :—

(1) विद्यार्थियों का स्वास्थ्य उनके हित में अच्छा रहे क्योंकि बिना स्वस्थ्य शरीर के स्वस्थ्य मस्तिष्क की कल्पना नहीं की जा सकती ।

(2) विद्यार्थीगण स्वस्थ्य आदतों के निर्माण के साथ एक स्वस्थ समाज की रचना में सहायक होंगे ।

विद्यालय का कार्य केवल शिक्षा से मात्र नहीं है । विद्यालय छात्रों में स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छी आदतों का निर्माण स्वास्थ्य में उत्पन्न दोषों को दूर करने स्वास्थ्य के विकास एवं प्रगति के लिये भी उत्तरदायी है । बालकों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये विद्यालय का वातावरण स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद हो तथा शुद्ध जल एवं पौष्टिक भोजन की व्यवस्था हो ।

प्रायः हमारे विद्यालयों में स्वच्छता की कमी रहती है । ग्रामीण विद्यालयों की दशा और खराब रहती है । इसका एक मात्र कारण छात्रों में स्वच्छता के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण की कमी है । इसके लिये आवश्यकता है कि शिक्षक प्रयास करें और बालकों में स्वच्छता के मात्रों को ज्ञान प्रदान करें तथा वातावरण को स्वच्छ बनाने में छात्रों का योगदान ले स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के प्रति छात्रों में दृष्टिकोण उत्पन्न करने के लिये विद्यालय में स्वास्थ्य सेवा योजनायें चलायी जांय ।

(1) स्वशासन प्रणाली से अनुसार विद्यालय में सभी कक्षाओं में स्वास्थ्य अधिकारी का चुनाव किया जाय स्वास्थ्य समितियों का निर्माण किया जाय ।

(2) शिक्षक छात्रों को व्यक्तिगत स्वच्छता का ज्ञान दें । आंख, नाक, कान, बाल आदि की स्वच्छता का निरीक्षण करें ।

(3) प्रोत्साहन पुरस्कार दिये जाय जिससे कक्षा में छात्र स्वास्थ्य के प्रति जागृत हों ।

(4) विद्यालय में प्रतिमाह में कम से कम दो बार स्वच्छता के लिये दिन निश्चित किये जांय । छात्र श्रमदान करें भवन, कक्ष, प्रांगण, बगीचे आदि की सफाई स्वयं करना सीखें ।

(5) स्वच्छता समिति के सदस्य नित्य अपनी कक्षा अथवा दल नायक अपने दल के सदस्यों के व्यक्तिगत स्वच्छता का निरीक्षण करें ।

(6) विभिन्न दलों के मध्य प्रतियोगिता हो (स्वच्छता सप्ताह के अन्तर्गत) तथा दल पुरस्कृत किये जायं ।

शिक्षकों की भूमिका—

1—शिक्षक छात्रों के कार्य में सहायक हों ।

2—शिक्षक छात्रों में स्वस्थ आदतों के डालने के लिये स्वयं जागरूक हों ।

3—शिक्षक विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण को स्वस्थ्यप्रद बनाने के लिये छात्रों को प्रेरित करें तथा उनका सहयोग लें ।

4—छात्रों के सामने स्वयं आदर्श प्रस्तुत करें तथा स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का परिचय दें ।

(5) छात्रों के व्यक्तिगत स्वच्छता का स्वयं भी निरीक्षण करें केवल छात्र सदस्यों पर ही न निर्भर करें ।

(6) विद्यालय चिकित्सक के कार्य में सहायक हों ।

(7) स्वास्थ्य सेवा विभाग से सम्पर्क रखें तथा संक्रामक रोगों के रोकथाम का उपाय करें ।

प्रश्न

1—स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं ? विद्यालय में स्वास्थ्य सेवा के सम्बन्ध में अध्यापक का क्या दायित्व है ?

पाठ--24

शुद्ध पेय जल

वायु एवं जल प्राणी मात्र के लिये अत्यन्त आवश्यक है । पाचन क्रिया के सुसंचालन के रक्त को तरल बनाये रखने के लिये तथा शरीर के दूषित पदार्थों के निष्कासन के लिये जल नितांत आवश्यक है । जल के बिना जीवन असम्भव है । हमारे शरीर का 1/3 भाग जल से ही बना है । अतः जीवित रहने के लिये जल एक परम आवश्यक द्रव है ।

शुद्ध पेयजल की आवश्यकता एवं व्यवस्था--

विद्यालय का यह उत्तरदायित्व है कि वह बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये शुद्ध एवं स्वास्थ्यप्रद जल की व्यवस्था करें। शिक्षक को जल के संगठन एवं स्रोत जल में होने वाली सम्भावित अशुद्धियां तथा उनसे उत्पन्न होने वाले रोगों के विषय में पर्याप्त जानकारी रखनी चाहिये, उसे जल को स्वच्छ करने की प्रक्रिया से भी सुपरिचित होना चाहिये ।

विद्यालयों में शुद्ध पेय जल व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता है । इसमें जरा भी असावधानी हुई तो जल दूषित होने की सम्भावना हो जावेगी। विद्यालय में लोहे या सीमेन्ट की टंकियां और पीतल या तांबे के कलशों में जल रखा जाता है । धातु के बर्तनों में जल गर्म हो जाता है । इस कारण गर्मियों में मटकों में जल रखा जाता है जिन पात्रों में जल भरा जाय उनको उचित ढंग से सुरक्षित स्थान में रखने का प्रबन्ध होना चाहिये । पीने के जल को रखने के लिये स्वच्छ हवादार स्थान होना चाहिये जहां पर धूल व गन्दगी न पहुंच सके जल पात्र ढक कर रखना चाहिये तथा बर्तनों से जल की निकासी के लिये एक पृथक् पात्र होना चाहिये जिससे जल को निकाल कर पीने के पात्र में दे दिया जाय । यदि टंकी या मटके में नल लगवा दिये जायं तो और भी उत्तम होगा । इन बर्तनों की नित्यप्रति तथा प्रतिदिन ताजा व स्वच्छ जल भरना चाहिये ।

प्रश्न

1--शुद्ध पेय जल के महत्व पर प्रकाश डालें ।

2--शुद्ध पेय जल की आवश्यकता पर विस्तार से लिखें ।

3--विद्यालय में शुद्ध पेय जल की व्यवस्था किस प्रकार की जा सकती है ? संक्षेप में लिखिये ।

पाठ--25

शौचालय एवं मूत्रालय की व्यवस्था

शिक्षक का दृष्टिकोण--

भवनों में सबसे उपेक्षित दशा मूत्रालय तथा शौचालय की होती हैं । सबसे पहले छात्रों में इस दृष्टिकोण को उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है कि भवन के ये हिस्से भी इतने ही महत्वपूर्ण होते हैं जितने कि शिक्षण कक्ष । विदेशों में सबसे अधिक ध्यान इन स्थानों की स्वच्छता पर दिया जाता है सार्वजनिक मूत्रालयों का उपयोग पैसे देने पर भी किया जाता है ।

प्रयोग निरीक्षण व्यवस्था--

1--प्रत्येक छात्र/छात्रा को शौचालय/मूत्रालय के प्रयोग और स्वच्छता का प्रयोग सिखाना चाहिये। निश्चित मूत्रालय छोड़ने से पहले पानी अवश्य डाल देवें। स्थान पर ही मूत्र त्याग करें। अक्सर यह देखा जाता है कि पूरे कमरे में जहां जिसका मन हो मूत्र त्याग कर देते हैं, जिससे दूसरे व्यक्ति को कमरे में घुसना ही मुश्किल हो जाता है । इस प्रकार की आदतों का निर्माण बचपन से ही प्राइमरी कक्षाओं से ही होना चाहिये ।

2--विद्यालय की स्वच्छता समिति के अन्तर्गत कार्यकारिणी के छात्र सदस्यों द्वारा ही मूत्रालय/शौचालय को स्वच्छ रखना चाहिये । शिक्षक को प्रमुख भूमिका निभानी चाहिये स्वयं भी जाकर कभी-कभी निरीक्षण करना चाहिये ।

मध्यावकाश के पश्चात् शौचालय/मूत्रालय की स्वच्छता अवश्य होनी चाहिये । प्रधानाचार्य को इन स्थानों की सफाई करने वाले कर्मचारियों को निश्चित आदेश देने चाहिय । कार्य के विषय में पूंछना चाहिये ।

प्रश्न

1--विद्यालय में शौचालय एवं मूत्रालय की आवश्यकता पर प्रकाश डालिये ।

2--विद्यालय में शौचालय एवं मूत्रालय की स्वच्छता के महत्व पर विस्तार से लिखिये ।

पाठ—26

अपोषण एवं कुपोषण

मानव के जीवन में बचपन का विशेष महत्व है उनकी सुयोग्यता तथा शारीरिक एवं मानसिक विकास उसके बाल्यकाल के विद्यालयी जीवन पर बहुत कुछ निर्भर है। यदि बालक के प्रारम्भिक जीवन में उसके समुचित विकास की ओर उसके माता-पिता तथा शिक्षक उचित ध्यान दें तो वह एक उन्नतिशील एवं समाजोपयोगी नागरिक के रूप में विकसित हो सकता है। अध्यापक को यह उत्तरदायित्व निभाने के लिये बालक के सर्वांगीण स्वस्थ्य विकास पर विद्यालय वातावरण म अनुकूल या प्रतिकूल डालने वाले समस्त तत्वों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये।

भोजन शरीर के लिये नितान्त आवश्यक है। यह शरीर की समस्त क्रियाओं के संचालन, शरीर के कोषों तथा तन्तुओं की टूट-फूट क्षतिपूर्ति पूर्ति करने के लिये तथा शरीर की वृद्धि के लिये आवश्यक तत्व प्रदान करने हेतु परम आवश्यक है। अतः बालकों के लिये विद्यालय में ही पोषक, स्वच्छ एवं स्वास्थ्यप्रद भोजन की व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे बालकों को कुपोषण के प्रभावों से बचाया जा सके। वहां खोमचे वालों को न आने देना चाहिये। विद्यालय को स्वयं पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे बालकों को स्वच्छ एवं सस्ता भोजन मिल सके। यदि जलपान गृह की व्यवस्था है तो विद्यालय के अधिकारियों को भोजन की स्वच्छता आदि का निरीक्षण करते रहना चाहिये भोजन में ऐसे पदार्थों को सम्मिलित किया जाय जो सस्ते तथा पोषक हों।

एक स्वस्थ बालक के भोजन में उसके कार्य के प्रकार, शरीर के आकार, आयु, जलवायु तथा ऋतु के अनुसार समस्त तत्वों (प्रोटीन, काबों हाइड्रेटवसा तथा खनिज लवण, विटमिन ए० बी० सी० डी० ई० और के) तथा विटमनों का समुचित मिश्रण होना चाहिये। जिससे कुपोषण से बचाया जा सके। भोजन के साथ 2 स्वच्छ जल की भी विद्यालय में व्यवस्था होनी चाहिये। जल की स्वच्छता के लिये फिटकरी, चूना, निर्मली आदि तथा रासायनिक पदार्थ प्रयोग में लाने चाहिये।

शरीर के उचित पोषण के लिये शरीर की आवश्यकता अनुसार संतुलित आहार मिलना आवश्यक है। उचित पोषण से मनुष्य का शारीरिक एवं मानसिक विकास होता है अपोषण से किसी पोषण तत्व की कमी या अनुपस्थिति से बीमारियां (Deficieney diseases) हो जाती है।

कुपोषण की समस्या हमारे देश के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है ऐसा अनुमान है कि देश में लगभग 60-70 प्रतिशत लोग कुपोषण या अपोषण के शिकार हैं। एक से पांच वर्ष की आयु वाले बच्चों की एक बड़ी संख्या प्रोटीन कैलोरी कुपोषण से पीड़ित है। विटामिन कुपोषण से लक्षण भी प्रायः बालकों में पाये जाते हैं। रुधिर अल्पता (एनीमियां) की भी एक गंभीर समस्या हमारे देश के सामने है। लगभग 30 से 40 प्रतिशत तक बच्चे इसके शिकार हैं। भोजन में लोहा, विटामिन बी तथा फालिक अम्ल (हरी पत्तीदार सब्जी में उपलब्ध) की कमी के कारण यह रोग होता है।

कुपोषण की पहचान—

आयु के हिसाब से बालक की लम्बाई तथा भार में कमी, पीला चेहरा, धंसी हुई आंखें, ढीली ढाली मांस पेशियां, खरदुरी त्वचा, सिर में प्रायः दर्द, जल्दी-जल्दी जुकाम, शीघ्र थकावट, शरीर में रोग से बचने का अभाव।

कुपोषण का मानसिक विकास पर भी प्रभाव पड़ता है। बच्चे में अभिप्रेरणा एकाग्रता की शक्ति तथा सीखने की क्षमता कम हो जाती है। उनमें जिज्ञासा मंद पड़ जाती है। स्कूल

के कार्यों को ठीक से पूरा नहीं कर पाते तथा परीक्षा में या तो अनुत्तीर्ण हो जाते हैं य उतीर्ण हो जाते हैं। उनमें उपलब्धियां निम्न स्तर की होती हैं। प्राइमरी स्कूलों में ह्रास ए अवरोध का एक कारण कुपोषण भी है।

कुपोषण के मुख्य कारण :

1--पोषण सम्बन्धी शिक्षा का अभाव।

2--अपूर्ण पोषण।

3--अधिपोषण।

4--स्वच्छता की कमी।

5--दूषित वातावरण--अंधेरे घर, पतली गलियां, साफ हवा की कमी, मादक वस्तु का सेवन।

6--निर्धनता--जिससे पोषण सम्बन्धी आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती। कुपोषण राष्ट्र की अत्यधिक हानि होती है। देश की आर्थिक स्थिति एवं जनशक्ति के विकास प कुपोषण का प्रभाव विभिन्न रूपों में पड़ता है। कुपोषित व्यक्तियों की जीवन अवधि भी कम जाती है।

बालाहार योजना--

प्राइमरी स्कूलों के बच्चों को पौष्टिक आहार देने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश सरका एवं केयर (care) अमेरिका एवं कनाडा में स्थित एक अलाभप्रदायिक, गर सरकारी बि लाभ की सहायता पहुंचाने वाली संस्था ने मिलकर 1965 में एक योजना बनाई है। जि बालाहार योजना कहते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य छात्रों के स्वास्थ्य को सुधारना है इस समय देश के 36 जनपदों में बालाहार योजना चल रही है। इसमें लगभग 1 लाख छात्रों प पोषित करने की जिम्मेदारी केयर ने और शेष की शिक्षा विभाग ने स्वयं ली है।

इस योजना को सफल बनाने में शिक्षकों को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है। आहार छात्रों में सुवितरण, प्राप्त आहार का रख-रखाव एवं उनकी स्थिति, आहार (व्यवहार) इस्तेमा योग्य है या नहीं, आदि की सूचना सही-सही एवं समय से सम्बन्धित अधिकारियों देनी चाहिये।

प्रश्न

1--अपूर्ण पोषण का अर्थ क्या है? इसके प्रमुख कारण क्या है? इस किस प्रकार रोका जा सकता है?

2--कुपोषण के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

3--बालाहार योजना का वर्णन कीजिये।

पाठ—27

स्वास्थ्य सेवाओं में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र की भूमिका

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य के व्यापक देख-रेख के लिये 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत चिकित्सा केन्द्रों की स्थापना हुई। साधारणतः यह केन्द्र ब्लाक मुख्यालय पर स्थित है। ये स्वास्थ्य केन्द्र लगभग 100 ग्रामों में बसने वाली 80,000 ग्रामवासियों के स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

एक आदर्श प्राइमरी चिकित्सा केन्द्र के भवन में एक औषधालय, एक चिकित्सक मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कल्याण तथा परिवार नियोजन कक्ष, एक लघु तथा शल्य कार्य कक्ष, एक प्रयोगशाला तथा 6 बिस्तरों के एक वार्ड का प्रबन्ध रखा गया है। प्रत्येक केन्द्र के अधीन ब्लाक में उपयुक्त स्थानों पर स्थित आठ उप केन्द्र होते हैं। इन केन्द्रों को विश्व स्वास्थ्य संगठन प्राविधिक सहायता एवं यूनाइटेड नेशन्स इण्टरनेशनल चिल्ड्रेन्स इमरजेन्सी फण्ड, जीप, उपकरण, दवाओं आदि की सहायता प्रदान करता है।

प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र द्वारा प्रदान की जाने वाली प्रमुख सेवायें।

1—चिकित्सीय सहायता।

2—मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य कल्याण तथा परिवार नियोजन व्यवस्था।

3—वातावरण सम्बन्धी स्वच्छता, शुद्ध पेय जल की व्यवस्था, कूड़ा करकट व गन्दगी अरोग्यात्मक निस्तारण को प्राथमिकता प्रदान करना।

4—संचारी रोगों की रोकथाम।

5—स्कूल स्वास्थ्य सेवा।

6—आवश्यक आंकड़ों का एकत्रीकरण।

7—स्वास्थ्य शिक्षा।

इन सेवाओं के अतिरिक्त केन्द्रों की स्थापना के समय यह ध्यान में रखा गया था कि कुछ राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रम जैसे मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम, चेचक उन्मूलन कार्यक्रम, ट्रोकोमा उन्मूलन कार्यक्रम आदि प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों के माध्यम से सम्पन्न होने चाहिए।

विद्यालय एवं प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र—

1—विद्यालय के छात्रों की चिकित्सीय परीक्षा एवं वातावरण के स्वच्छता के सम्बन्ध में प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों से सहयोग प्राप्त करना चाहिए।

2—यदि किसी छात्र में संक्रामक रोग का आरम्भ विद्यालय में होता है तो इसकी सूचना तुरन्त प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र को देना चाहिए।

3—राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों में विद्यालय को चाहिए कि वह प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र को सहयोग प्रदान करें।

प्रश्न

1—प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र का क्या महत्व है? संक्षेप में लिखिये।

2—प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र द्वारा दी जाने वाली प्रमुख सेवाओं का वर्णन कीजिये।

पाठ— 28

स्वच्छता

मानव के जीवन में बचपन का विशेष महत्व है क्योंकि उसके जीवन में यही काल उसके भावी मानसिक एवं शारीरिक विकास की दिशा निर्धारित करता है। अतः शिक्षक को स्वच्छता सम्बन्धी ज्ञान देना अति आवश्यक है जिससे उसका स्वस्थ मानसिक एवं शारीरिक विकास हो सके। वातावरण का प्रभाव बालक के जन्म से पूर्व ही प्रारम्भ हो जाता है। क्योंकि माँ के स्वास्थ्य का प्रभाव बालक के स्वास्थ्य पर पड़ता है। जन्म के बाद सर्वप्रथम घर का वातावरण उसके भावी जीवन के विकास की दिशा को निर्धारित करता है। स्वच्छ जल एवं भोजन, स्वच्छ निवास, स्वस्थ आदतें, घर की संस्कृति आदि उसके विकास की नींव डालते हैं।

विद्यालयी वातावरण का भी बालक के विकास क्रम में अपना विशेष स्थान है। विद्यालय के वातावरण की सामान्य स्वच्छता नितान्त आवश्यक है। धूल स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। इससे संक्रामक रोग फैलने की आशंका रहती है। अतः विद्यालय के समस्त कमरों, फर्नीचरों, आदि अन्य उपकरणों की समुचित रूप से सफाई होनी चाहिये स्कूल के आस-पास तथा उसके अहाते में मच्छरों की वृद्धि के लिये गन्दे पानी के गड्ढे तथा नालियाँ नहीं होनी चाहिये जलाशय की स्वच्छता समय-समय पर करते रहना चाहिये। संक्रामक रोगों से पीड़ित बालकों को जलाशय में स्नान नहीं करने देना चाहिये। विद्यालय में संवतन की उचित व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे स्वच्छ एवं शुद्ध वायु का आवागमन हो सके। भारत के अधिकांश भागों में अत्यधिक गर्मी तथा सर्दियों में अत्यधिक सर्दी पड़ती है। अतः विद्यालय में स्वच्छता को ध्यान में रखते हुये स्वचालित पंखों, खस की टट्टियों आदि की व्यवस्था होनी चाहिये।

भवन तथा मैदान की प्रतिदिन की स्वच्छता स्वास्थ्य तथा विद्यालय के उत्तम प्रबन्ध के दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सफाई एवं स्वच्छता का वातावरण बालकों में स्वच्छता के लिये प्रेम तथा स्वच्छता एवं सफाई पूर्वक जीवन व्यतीत करने की आदत डाल देगा।

धूल निश्चयपूर्वक स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। धूल के कणों से श्वास लेने की प्रक्रिया विशेष रूप से प्रभावित होती है। अतः प्रतिदिन प्रकोष्ठों की कुर्सी, मेज, डेस्क, श्यामपट आदि उपकरणों की स्वच्छता और धूल साफ करना अत्यंत आवश्यक है। खेल के मैदान की धूल को नियंत्रित करने के लिये पानी का छिड़काव जरूरी है। खिड़कियों के शीशों को भी प्रतिदिन पोंछ कर स्वच्छ रखना चाहिये जिससे अधिकांश सूर्य का प्रकाश आ सके। कक्षा में वायु व प्रकाश आदि जिन साधनों का प्रयोग किया जाता है उनको स्वच्छ रखना जरूरी है।

गन्दे पानी की निकासी के लिये भूमिगत नालियों का होना उत्तम होगा, गंदा कचरा दूर एक गड्ढे में डालना चाहिये और बाद में उन गड्ढों को भरवा देना चाहिये। स्नानागार को साबुन तथा पानी से धोकर स्वच्छ करवाना जरूरी है। शौचालय एवं मूत्रालय की स्वच्छता भी जरूरी है। समय-समय पर फिनाइल, डी० डी० टी० एवं अन्य जीवाणु नाशक औषधियों का प्रयोग जरूरी है। जिससे संक्रामक रोग न फैले।

अनेकों आधुनिक विद्यालयों में तैरने हेतु जलाशय की व्यवस्था है। इनकी स्वच्छता भी महत्वपूर्ण है। इन जलाशयों के निर्माण का उद्देश्य मनोरंजनात्मक ढंग से स्वास्थ्य का विकास करना है तथा एक प्रकार से व्यायाम का साधन भी है। किन्तु यदि इनकी उचित स्वच्छता पर ध्यान न दिया जाय तो ये बालक के लिये हानिकारक है। गर्म पानी और साबुन से नहाये हुये स्वच्छ बालक को ही उसमें तैरने की अनुमति देनी चाहिये क्योंकि यह एक प्रकार का बड़ा टब ही है। जिसमें बड़ी सरलता से एक बालक के संक्रामक रोग दूसरे बालक में

स्थानान्तरित हो सकते हैं । जलाशय के पानी की निकासी तथा स्वच्छता की व्यवस्था अत्यंत वांछनीय है । समय–समय पर वैज्ञानिक साधनों द्वारा पानी का परीक्षण भी जरूरी है ।

विद्यालयी स्वच्छता के साथ–साथ व्यक्तिगत स्वच्छता भी जरूरी है । बालकों के तन की स्वच्छता के साथ–साथ उनके वस्त्र तथा भोजन आदि की स्वच्छता भी जरूरी है । शिक्षक को हानिप्रद वस्त्र तथा भोजन से समय–समय पर सचेत करते रहना चाहिये । बालकों के दांत की सफाई, बाल की सफाई, नाखूनों की सफाई, यूनीफार्म तथा जूते मोजों की स्वच्छता का भी निरीक्षण करते रहना चाहिये जिससे कक्षा एवं स्कूल का वातावरण भी स्वच्छ एवं साफ रहे और उनमें अच्छी आदतों का निर्माण हो ।

विद्यालयों में बालकों का स्वास्थ्य चार्ट भी होना चाहिये, जिसमें डाक्टरी जांच के पश्चात् उसकी पूर्ति हो और फिर उसके स्वास्थ्य की प्रगति अंकित हो । चिकित्सीय सलाह एवं इलाज से रोग का निराकरण एवं उपचार तभी सम्भव है ।

प्रश्न

1––स्वच्छता के महत्व पर संक्षेप में लिखिये ।

2––विद्यालयी स्वच्छता से आप क्या समझते हैं ? विस्तार से लिखिये ।

पाठ—29

प्रदूषण

प्रदूषण का शाब्दिक अर्थ है दोषमुक्त या अस्वस्थ । मानव जीवन का पोषण करने वाले आवश्यक तत्व हवा, पानी और भोजन है । हवा, पानी किसी स्थान पर संचित नहीं है अपितु पूरे भमण्डल में फैले हैं, जहां तक वायु का प्रश्न है यह मनुष्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है । प्रत्येक मनुष्य प्रति दिन औसतन पैंतीस पौण्ड वायु का सेवन करता है । प्राचीन काल से मनुष्य भोजन की शुद्धता पर ध्यान देता चला आया है । उसने जाने अनजाने वायु की शुद्धता पर ध्यान नहीं दिया इसका प्रतिफल यह हुआ कि आज वायु प्रदूषित है एवं वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या वायु प्रदूषण की है । प्रदूषण से तात्पर्य है किसी भी स्थान पर दूषित वस्तुओं की आवश्यकता से अधिक उपस्थिति ।

वायु प्रदूषण—

वास्तव में वायु प्रदूषण का प्रारम्भ प्राचीन काल में जब से मनुष्य ने आग जलाकर भोजन बनाना प्रारम्भ किया, तभी से हुआ । ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास हुआ वायु प्रदूषण भी बढ़ता गया । आज मानव सभ्यता विज्ञान के कारण अपनी पराकाष्ठा पर है । पर साथ ही साथ वायु प्रदूषण से त्रसित लोग भी बहुत अधिक हैं । प्रदूषण के कारणों पर विचार किया जाय तो निम्न हैं—

1—जहां-तहां कूड़ा करकट फेंकना ।

2—सार्वजनिक स्थानों पर मल मूत्र का त्याग एवं गंदगी करना ।

3—औद्योगिक उत्सर्जन ।

4—रसायनिक व रेडियो धर्मी धूल ।

5—शोर गुल ।

6—बढ़ती हुई जन-संख्या ।

कूड़ा करकट में वे सभी उच्छित पदार्थ (Waste Matter) आते हैं जो घरों, गाँवों, शहरों में झाड़ू लगाने के पश्चात् एकत्रित होते हैं । कूड़ा-करकट मुख्यतया सूखे पदार्थ जो घर आँगन, चौक, गली आदि में बुहारने के बाद प्राप्त होते हैं । इसमें धूल, रद्दी कागज, औद्योगिक संस्थानों से प्राप्त प्लास्टिक एवं पैकिंग के समान इत्यादि आते हैं । दूसरा भाग इसमें गीले पदार्थ हैं, जिसमें रसोई घर का कूड़ा, होटलों एवं जलपान गृहों के कूड़े आते हैं । फलों में एवं सब्जियों, शिशु बच्चों का मल, मरे जानवर, बगीचों एवं वाटिकाओं का कूड़ा-करकट इत्यादि आता है । तीसरे प्रकार का कूड़ा इमारती अवशिष्ट है इन कूड़ा एवं करकटों से जहां एक ओर गंदगी फैलती है, मक्खियां उत्पन्न होती हैं एवं चूहे उत्पात मचाते हैं तथा दूसरी ओर कीटाणुओं के प्रसारण में पेचिस, आंतशोध, हैजा, मोती झरा एवं आँखों का रोग, फोड़े-फुन्सी, तपेदिक इत्यादि बीमारियां फैलती हैं ।

निराकरण—

कूड़े को इधर-उधर नहीं फेंकना चाहिये । एक निश्चित स्थान पर ही डालना चाहिये इसमें नागरिकता का ध्यान रखना चाहिये । अपना घर साफ करके अन्य सार्वजनिक स्थान को गंदा न किया जाये । कूड़ा कूड़ेदान में ही डालना चाहिये । गांवों में जहां इस प्रकार की व्यवस्था न हो गड्ढे में कूड़े को डाल कर मिट्टी से पाट देना चाहिये । इससे कूड़ा कुछ दिनों के बाद सड़कर उपयोगी खाद बन जायेगा ।

2—सार्वजनिक स्थान पर मलमूत्र का त्याग करना, इधर-उधर अनिश्चित स्थानों पर मल त्याग करना बीमारी को जन्म देना है। इससे वातावरण भी गंदा होता है साथ ही दुर्गन्ध से वायुमण्डल भी दूषित हो जाता है साथ ही मक्खियां व बीमारी के कीड़े पैदा होकर अनेक रोगों को फैलाते हैं जैसे टाइफाइड, हैजा, अतिसार कृमि आदि। बीमार व रोग ग्रसित व्यक्तियों के मल से उसी रोग का प्रसार होता है। जो स्वस्थ मनुष्यों के लिये खतरा है। इसी प्रकार इधर-उधर थूकना भी एक गंदी आदत है जो रोग प्रसार व वायु प्रदूषण में सहयोगी है। धूम्रपान की आदत भी स्वयं के लिये तो हानिकारक है ही साथी जो पास रहता है उसे भी उनके द्वारा निकाले गये धुएं का सेवन करना पड़ता है। धूम्रपान करने वाले से अधिक निकट रहन वाले व्यक्ति को इस धुएं से हानि होती है। वायु प्रदूषण के ये भी कारण हैं।

निराकरण—

मूत्रालय व शौचालय का स्वच्छ प्रबन्ध होना चाहिये। शहरों में सेप्टिक टैंक व सीवर-सीवर तरीका ठीक है। गांवों में गड्ढों में संडास बना कर उसे मिट्टी से ढक देना ठीक है इससे खाद भी बन जाती है। थूकने के लिये थूकदानी का प्रयोग करें और सार्वजनिक स्थानों पर धूम्रपान न करें।

3—औद्योगिक उत्सर्जन—

आज विज्ञान के इस युग में देश की प्रगति उद्योग धन्धों की प्रगति पर ही निर्भर करती है। परन्तु उद्योग धन्धों के कारण चिमनी से निकले हुए धुएं समस्त वायु मंडल को दूषित कर रहे हैं। जिसके कारण हवा में दूषित गैसों की मात्रा अधिक हो गई है। इसके अतिरिक्त उद्योग-धन्धों द्वारा उत्सर्जित पदार्थ भी आस-पास स्थित नदियों में जाते हैं। दूसरे आजकल शहरों में जो आटोमोबाइल्स वाहन (मोटर) इत्यादि हैं, इसके फलस्वरूप दूषित वायुमंडल में फैलती है।

निराकरण—मिलों की चिमनियां बहुत ऊंची बनाई जायं एवं धूम्र रहित (Smokeless) बनाई जायें। उद्योग-धन्धों द्वारा प्राप्त उत्सर्जित पदार्थ को नदियों में न बहाकर उसे पुनः उपयोग में लाया जाये।

4—रासायनिक व रेडियो धर्मी धूल—आजकल विशेषकर न्यूक्लियर औजार (परमाणु औजार) इत्यादि के परीक्षण से भी वायुमंडल दूषित हो रहा है। होरोशिमा एवं नागा शाकी में जब प्रथम परमाणु बम गिराया गया था तो धन एवं जन की हानि के साथ ही वहां का वातावरण भी पूर्णतः दूषित हो गया था। आज भी वहां के विषाक्त वायुमण्डल में सांस लेने से मनुष्य बीमार पड़ जाता है।

5—शोर गुल—शोर से तात्पर्य है अनियन्त्रित ध्वनि। शोर कर्ण कटु होता है। शोर के कारण कार्य करने की क्षमता घटती है एवं लम्बी अवधि तक निरन्तर शोर गुलोय वातावरण श्रवण शक्ति को क्षति पहुंचाता है और कुछ लोगों में मनोविक्षप्ति (Phychosis) पैदा करती है। ध्वनि मापने की इकाई डेसीबेल है। मानव को शान्तिमय जीवन बिताने के लिये साधारणतया शून्य से कुछ अधिक डेसीबेल ध्वनि की आवश्यकता है परन्तु 12 बजे रात्रि में भी बड़े नगरों में 15 डेसीबेल का ध्वनि रहता है। एक बार जर्मनी की एक कम्पनी ने अपने कर्मचारियों की कार्यक्षमता बढ़ाने हेतु इस डेसीबेल पर आधारित कार्यालय का निर्माण कराया परन्तु उसमें जितने कर्मचारी थे उनका वहां कार्य करने में मन नहीं लगा। कहने का तात्पर्य यह है कि आज मानव स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक वस्तुओं की ओर अपने को अभ्यस्त कर चुका है।

निराकरण—शोर के रोक-थाम हेतु बड़े-बड़े कारखानों एवं मोटर गाड़ियों में शोर नियंत्रक यंत्र के उपयोग करने की आवश्यकता है।

6--बढ़ती हुई जनसंख्या--नाना प्रकार के प्रदूषणों के लिए जिम्मेदार आज बढ़ती हुई जनसंख्या ही है। प्रकृति में कार्बन चक्र हमेशा चलता रहता है। होता यह है कि मानव अपने सांस द्वारा आक्सीजन लेता है एवं कार्बन डाई आक्साइड छोड़ता है। पेड़, पौध कार्बन डाई आक्साइड लेते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं। इस प्रकार प्रकृति में संतुलन बना रहता है। परन्तु आज को बढ़ती हुई जनसंख्या एवं कल-कारखानों से निकली दूषित वायु के कारण वायु मंडल में कार्बन डाई आक्साइड का भंडार एकत्रित हो गया है। पिछले दो सौ वर्षों में मानव ने 40,50,000 टन अधिक कार्बन डाई आक्साइड उगली है। कार्बन डाई आक्साइड गैस को विशेषता है कि यदि एक बार वह गर्मी को अवशोषित कर लेती है छोड़तो नहीं। इसी प्रकार यदि वायुमंडल में कार्बन डाईआक्साइड का भंडार बढ़ता रहा तो वह दिन दूर नहीं जब वायुमंडल को गर्मी से हो समस्त हिमाच्छादित पिघल जाय और महाप्रलय आ जाय।

निराकरण--इसके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता आज की बढ़ती हुई जनसंख्या के रोकथाम के उपाय पर विचार करना है।

जल प्रदूषण--जल ही जीवन है। स्वच्छ जल जीवन के लिए अमृत है और अशुद्ध जल रोग का कारण है। कहावत है--"बासी भोजन, गंदा पानी, ये है रोग की निशानी"। जल का प्रदूषण विभिन्न कारणों से होता है। आज वैज्ञानिक युग में नित्य नये वैज्ञानिक परीक्षण हो रहे हैं। हर शक्तिशाली सम्पन्न देश इस क्षेत्र में होड़ की दशा में है। हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान बम बन चुके हैं जो मानव विनाश के लिए पूर्ण है। जिसके परीक्षण मात्र से ही समस्त वायु मंडल प्रदूषित हो जायेगा। ये परीक्षण महा सागर के तट में किये जाते है जिससे जल प्रदूषण हो रहा है। वर्षा द्वारा वही जल बरस कर नदी नहरों से होता हुआ घर के नल में प्रवाहित होता है और तब जल प्रदूषण हो होता है। वायु प्रदूषण के अन्तर्गत हमने देखा, मिल की चिमनियां इसे कितना प्रभावित करती हैं उन्हीं मिलों का रासायनिक जल, निरर्थक मलवा, वहां का कूड़ा-कचरा बहाकर नदियों, नालों, में मिला दिया जाता है जो जल प्रदूषण करता है। प्राचीन काल में जिस जल को जीवन कहा गया था आज वही जल प्रदूषण के कारण मृत्यु का दूत है। जल प्रदूषण का मुख्य कारण अविवेकपूर्ण ढंग से नदियों में प्रवाहित जल, मलिन जल, कूड़ा, कचरा, अधजले शव, पशु शव एवं औद्योगिक संस्थानों के निरर्थक पदार्थों को नदियों में फेंकना है। वाहित मल, मलिन जल एवं कूड़े-करकट में असंख्य कीटाणु होते हैं जो खान-पान द्वारा फैलने वाले रोग का प्रसारण करते हैं।

निराकरण--जल प्रदूषण रोकने हेतु केन्द्रीय सरकार ने जल प्रदूषण निवारण कानून लागू किया है जिसके अनुसार उपरोक्त दूषित पदार्थों को जल में फेंकने पर प्रतिबन्ध लगाया जाना है। आवश्यकता इस बात की है कि हम शुद्ध एवं निरापद जल का ही उपयोग करें। इसके लिए हमें अपने उपयोग में आने वाले जल को उबाल कर, छान कर, एवं फिटकिरी के द्वारा शुद्ध करने की आवश्यकता है। शहरों में तो शुद्ध पेय जल के वितरण की व्यवस्था है, परन्तु ग्रामों में भी कुओं में पोटेशियम परमैंगनेट डालकर जल को शुद्ध किया जाता है। व्यक्तिगत रूप से भी हमें पीने वाले जल को ढककर रखना चाहिये। घर में रखे हुये जल को भी क्लोरीनीकरण द्वारा समय-समय पर शुद्ध कर लेना श्रेष्यकर है।

प्रश्न

1--प्रदूषण का अर्थ क्या है? यह कितने प्रकार से होता है? किसी एक का सविस्तार वर्णन कीजिये।

2--वायु प्रदूषण के कारणों का उल्लेख करते हुए उनके निराकरण का वर्णन कीजिये।

पाठ 30

मादक वस्तुयें

मादक वस्तुयें कौन-कौन सी हैं इसकी निम्नलिखित सूची बनाई जा सकती है :—

(1) शराब और अल्कोहल पदार्थ ।

(2) भांग, गांजा, अफीम, चरस आदि ।

(3) बीड़ी, सिगरेट, चुरुट, सिगार आदि।

(4) गोलियों के रूप में नशीली दवायें जैसे एल0 एस0 डी0 ।

(5) इंजेक्शन के रूप में नशीली दवायें ।

इन मादक वस्तुओं को पहले पहल व्यक्ति मौज-मस्ती या आनन्द के लिए उत्सुकतावश लेता है, कुसंगति इसे प्रेरित करती है, इसीलिए कहा जाता है कि संगी साथी सोच-समझ कर चुनना चाहिए। मादक वस्तुओं के सेवन के लिये तथा उसे खरीदने के लिये पैसों की आवश्यकता होती है। जब पैसे बालक के पास सरलता से उपलब्ध नहीं होते तब उसे चोरी करने की आदत पड़ जाती है।

मादक वस्तुओं के सेवन से हानि—किसी भी मादक वस्तु के सेवन करने से इसका सीधा प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है। कुछ समय के लिये व्यक्ति भले ही स्वयं को अधिक चैतन्य अनुभव करे किन्तु इसका बाद का प्रभाव बहुत अधिक हानिकर होता है। धीरे-धीरे यह आदत बन जाती है और तब बिना मादक वस्तु का सेवन किये व्यक्ति रह नहीं सकता। शरीर खोखला होता जाता है और मस्तिष्क सुन्न तथा आयु कम हो जाती है। बुद्धि भ्रष्ट होकर सोचने समझने और निर्णय लेने की शक्ति धीरे-धीरे कम होती जाती है। मनुष्य आत्मविश्वास खो बैठता है। एक स्वस्थ सुन्दर व्यक्ति भी मादक वस्तुओं के सेवन से कुछ ही समय में जीर्ण शीर्ण हो जाता है और समाज का उपयोगी अंग न रह कर समाज पर बोझ बन जाता है।

अतः अध्यापक को स्वयं सभी मादक वस्तुओं के सेवन से दूर रहना चाहिये और प्रयत्न-पूर्वक बालकों को मादक वस्तुओं के सेवन की हानियां बतलाते हुये उन्हें भी इससे दूर रहने की प्रेरणा प्रदान करनी चाहिये।

प्रश्न

1—मादक पदार्थ, कौन-कौन से होते हैं ? उनका शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

पाठ 31

शारीरिक मुद्रा एवं थकान

मानव के जीवन में बचपन का विशेष महत्व है क्योंकि यही उसके भावी जीवन का निर्धारण करता है। अतः शिक्षक को बालक की शारीरिक, मानसिक मुद्राओं आदि का विशेष ध्यान रखना जरूरी है, जिससे उसके विकास पर बुरा प्रभाव डालने वाले तत्वों से सतर्क रहे।

बालक के विकास को आनुवंशिकता और वातावरण दोनों ही समान रूप से प्रभावित करते हैं। अनुवंशिकता पर तो शिक्षक का वश नहीं चलता। परन्तु बालकों की शारीरिक मुद्राओं पर विशेष ध्यान दे कर अनुवंशिकता के बुरे प्रभावों को कम कर सकता है। बालकों के लिखते व पढ़ते समय बैठने के आसन आदि का उनके शरीर के विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रकार के प्रभाव डालता है। यदि बैठने का आसन दोषपूर्ण है, तो बालक के पाचन तन्त्र, दृष्टि आदि में भी दोष उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना रहती है। अच्छे श्यामपट का प्रयोग न किया जाय तो बालक नेत्र दोष का शिकार होने के साथ शैक्षिक दृष्टि से भी पर्याप्त प्रगति न कर सकेगा और उसे विश्रान्ति होगी। उसका ध्यान कार्य में केन्द्रित करने में कठिनाई होगी। परिणामस्वरूप कार्य में वांछित दक्षता का अभाव होगा। अतः शिक्षक को विद्यालय के दैनिक कार्य के अन्तर्गत बालक की रुचि उनके स्वास्थ्य एवं मनोवृत्ति पर बुरा प्रभाव डालने वाले तत्वों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिये जिससे बच्चे का शारीरिक एवं मानसिक विकास हो सके।

बहुधा अत्यधिक शारीरिक व्यायाम, लम्बे समय तक मानसिक कार्य, मनोरंजन का अभाव बालक में श्रान्ति पैदा करता है जिसका बालक के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है। अतः शिक्षक को थकान के कारण और निवारण तथा बालकों की विश्राम सम्बन्धी आवश्यकताओं की पर्याप्त जानकारी होनी नितान्त आवश्यक है। और तभी वह अपने महत कर्त्तव्य को पूरा करने में सफल हो सकेगा क्योंकि इनका बालक के संतुलित विकास पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

थकान या श्रान्ति--हर प्रकार के कार्य के बाद स्वभावतः श्रान्ति आती है। अधिक कार्य करने से चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक बालक के कार्य करने की दक्षता तथा शक्ति कम हो जाती है। जिसके फलस्वरूप कार्य में त्रुटियों का आधिक्य हो जाता है। थकान एक शिथिलता की भावना उत्पन्न करती ह। जिससे काम करने की इच्छा मर जाती है।

थकान के कारण--थकान के मुख्य दो प्रकार हैं--मानसिक थकान तथा शारीरिक थकान। शरीर की क्रियाशीलता शरीर के तीन अवयवों पर निर्भर करती है :--

1--मस्तिष्क तथा सुसुम्ना जो कार्य की संवेगशीलता या प्रेरणा उत्पन्न करते हैं।

2--स्नायु जो संवेग या प्रेरणा को मांसपेशियों तक ले जाने का काम करते हैं।

3--मांसपेशियां--जो संकुचन क्रिया द्वारा संवेग को क्रियान्वित करती हैं थकान का प्रमुख लक्षण कार्य करने की अनिच्छा है। विशेषकर वह कार्य जिससे थकान उत्पन्न हुई है। बालक जम्हाई लेगा, उसे झपकी आयेगी, थकान का अनुभव होगा, एकाग्रता की कमी होगी। फलस्वरूप काम में धीमापन एवं त्रुटियां होंगी। उसका दुष्प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। निरन्तर श्रान्ति हानिकारक है और उसके कुप्रभाव से बालक को बचाने के लिए शिक्षक को सतर्क रहना चाहिए। अतः शिक्षक को पाठ की लम्बाई, विषयों की व्यवस्था, हवा और प्रकाश, बैठने के ढंग आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

यह निर्विवाद सत्य है कि विद्यालय प्रारम्भ होने के प्रथम दो घंटों में सबसे अच्छा काम होता है और जसे-जसे लगातार कार्य का समय बढ़ता जाता है काम करने की क्षमता घटती जाती है । इसीलिए मध्यावकाश का अधिक महत्व है विद्यालय के कार्यक्रम में वे काम जिसमें अधिक एकाग्रता की आवश्यकता है, ऐसे समय में व्यवस्थित करने चाहिए जबकि बच्चों की शक्ति ताजी हो । शिक्षक को उन कारणों पर ध्यान देना चाहिये, जिससे आवश्यक थकान की सम्भावना हो इसमें मुख्य अपौष्टिक भोजन अस्वास्थ्यकर घर का वातावरण रोग एवं उद्वेगात्मक अस्थिरता एवं उत्तेजना है । शिक्षक को उन बच्चों के प्रति विशेष सतर्क रहने की आवश्यकता है जिनमें माता-पिता के प्रति या परीक्षा आदि के प्रति भय हो बच्चों का विश्वास पात्र बनकर ही यह सम्भव होगा ।

थकान का उपचार—

शारीरिक तथा मानसिक प्रक्रिया में एक दूसरे की सम्पूरक समझी जाती है । मुख्यतया पाठ पढ़ते समय मस्तिष्क के जिन अंगो का प्रयोग हुआ है उसकी थकान शारीरिक सक्रियता जैसे व्यायाम और खेल आदि से दूर की जा सकती है व्यायाम एवं खेल आदि से श्वसन की तीव्रता तथा रक्त प्रवाह मस्तिष्क में थकान के विष को तीव्रता से दूर कर सकते हैं । गर्मपानी से स्नान कर स्नान भी उपयोगी है छोटे और मनोरंजक पाठों का भी सर्वोत्तम परिणाम देखने में आया है । कोई भी पाठ आधे घंटे से अधिक का नहीं होना चाहिये और दो पाठों के बाद 15 मिनट का अवकाश देना चाहिये । बच्चों के लिये पर्याप्त स्थान हवा और ताप का प्रबन्ध होना चाहिये और जहां तक सम्भव हो कम शोर हो ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये ।

प्रश्न

1—"शिक्षक को बालक की शारीरिक, मानसिक मुद्राओं आदि का विशेष ध्यान रखना क्यों जरूरी है ?" इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए ।

2—थकान के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए ।

3—थकान का उपचार किस प्रकार किया जा सकता है ? संक्षेप में लिखिए ।

सन्दर्भ पुस्तक सूची

क्रम सं0	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशक
1	जनतंत्रात्मक विद्यालय संगठन	डा0 सरयू प्रसाद चौबे	दिल्ली पुस्तक सदन दिल्ली
2	शिक्षालय संगठन	रायबर्न डब्लू0 एम0	दि अपर इन्डिया पब्लिशिंग हाउस, लखनऊ ।
3	शिक्षालय व्यवस्था	एम0 एल0 जैन	शिव लाल अग्रवाल एण्ड क0 प्रा0 लि0, आगरा ।
4	विद्यालय संगठन एवं संचालन	बी0डी0 सिंह, भूदेव शास्त्री	विनोद पुस्तक मन्दिर हास्पिटल रोड, आगरा ।
5	भारतीय शिक्षा की समस्यायें	डा0 रामशकल पांडे, राम पाल सिंह, जयदेव आर्य	लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, पुस्तक प्रकाशन, आगरा ।
6	बुनियादी शिक्षालय संगठन तथा विभिन्न विषयों का शिक्षण	के0 सी0 मलैया, विद्यावती मलैया	राज कमल प्रकाशन, दिल्ली।
7	सामुदायिक संगठन तथा रचनात्मक कार्य	डा0 उमराव सिंह	राम नारायण लाल, बेनी-माधव, कटरा रोड, इलाहाबाद ।
8	प्रारम्भिक पाठशाला प्रबन्ध तथा स्वास्थ्य-शिक्षा	श्रीमती रानी टंडन	रामनारायण लाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद।
9	प्राथमिक शिक्षा की समस्यायें	दिनेश चन्द्र भारद्वाज	राधा प्रकाशन मन्दिर, आगरा।
10	प्राथमिक शिक्षा की समस्यायें	गंगा महेश मिश्र	
11	स्वास्थ्य शिक्षा	डा0 जी0 पी0 शेरी	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
12	Health Education	Dr. S. P. Choube	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
13	Community Organization	Murray G. Rose	Harper and Row Publishers, London.
14	पाठशाला प्रबन्ध, स्वास्थ्य शिक्षा तथा सामुदायिक संगठन	दिनेश चन्द्र भारद्वाज	विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
15	आधुनिक विद्यालय संगठन	राम खेलावन चौधरी	हिन्दी साहित्य भण्डार अमीनाबाद, लखनऊ।

क्रम सं०	पुस्तक का नाम	लेखक	प्रकाशन
16	सामुदायिक संगठन	घनश्याम दास नागर	रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ
17	स्कूल प्रबन्ध	हेम राज निर्मल मनमोहन सहगल	दिल्ली पुस्तक सदन, दिल्ली
18	Nilopheri	S. K. Dey	Asia Publishing House, New Delhi.
19	Community Development in India	B. Mukerj I. C. S.	Orient Longmans, Bombay, Calcutta, Madras, N. Delhi.
20	व्यक्तिगत और सामुदायिक विकास	बैजनाथ सिंह	ब्रिटिश बुक डिपो हजरतगंज, लखनऊ ।

परियोजना से सम्बद्ध सदस्यगण :—

1—श्रीमती हमीदा अजीज

2—श्री अब्दुल मालिक

3—श्री रामचरित मिश्र

4—श्री अनंतराम मिश्र

5—सुश्री गोविन्द आनंद

संदर्शिका-सृजन हेतु आयोजित कार्यशालाओं के प्रतिभागीगण:--

1--सुश्री सावित्री शर्मन--प्रवक्ता रा0 महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद।

2--श्रीमती सुमित्रा धूलिया--प्रवक्ता रा0 महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद।

3--श्रीमती प्रेमा वर्मा--स0अ0रा0बा0वि0 (महिला) इलाहाबाद।

4--डा0 प्रभाशंकर रावत--समन्वयक रा0 दी0 वि0 देहरादून।

5--श्री मिश्री लाल गुप्त--स0अ0रा0वी0वि0 मंझनपुर, इलाहाबाद।

26/8/82

पी0 एस0 यू0 पी0--30 शिक्षा--3-9-81-1,000 (पी0डी0)।

NIEPA DC
D00345